महाकवि नन्ददास प्रणीत

रासपंचाध्यायी

और

भँवरगीत

टीकाकार

पं० उदयनारायण तिवारी एम० ए०

तरुण-भारत-ग्रन्थावली-सं० ३६

महाकवि नन्ददास-प्रणीत

रासपंचाध्यायी

और

भँवरगीत

सम्पादक
उदयनारायण तिवारी, एम० ए०, साहित्यरत्न

प्रकाशक
लक्ष्मी-आर्ट-प्रेस, दारागंज, प्रयाग

प्रथमावृत्ति] सं० १९९३ वि० [मूल्य १।) रु०

प्रकाशक का वक्तव्य

महाकवि नन्ददास जी की रासपंचाध्यायी और भँवरगीत, सुसम्पादित रूप में, प्रकाशित करने की बहुत दिन से हमारी इच्छा थी। इतने में पंडित जवाहरलाल जी चतुर्वेदी अपनी सम्पादित की हुई रासपंचाध्यायी की पाडुलिपि हमारे पास लाये; और गत वर्ष उक्त चतुर्वेदी जी के निरीक्षण में उसका छपना भी शुरू हो गया; परन्तु कारण-विशेष से चतुर्वेदी जी के द्वारा सम्पादित कार्य पूर्णरूप से प्रकाशित न हो सका, और पुस्तक लगभग एक वर्ष से अधिक समय तक प्रेस में ही पड़ी रही।

अस्तु। प्रस्तुत प्रकाशन में "रासपंचाध्यायी" मूल और "रास-सम्बन्धी कुछ पद" चतुर्वेदी जी के सम्पादित किये हुए हैं, इसके लिए हम आपके बड़े कृतज्ञ हैं। शेष सम्पादनकार्य हिन्दी के उदीयमान लेखक और साहित्यमर्मज्ञ पंडित उदयनारायण जी तिवारी ने किया है। आपने कितने परिश्रम और योग्यतापूर्वक यह कार्य किया है, सो रसिक और विज्ञ पाठक स्वयं जान लेंगे।

आशा है कि हिन्दी के प्राचीन साहित्य तथा काव्य के अनुरागियों—और विशेषकर विद्यार्थी और उच्च साहित्य के परीक्षार्थी वर्ग—के लिए यह ग्रन्थ सविशेष रूप से लाभदायक और उपयोगी सिद्ध होगा।

प्रस्तावना

'रास-पंचाध्यायी' तथा 'भँवर-गीत' के रचयिता व्रज कोकिल नन्ददास के जीवन-चरित्र से अभी तक हिन्दी-संसार एक प्रकार से अपरिचित है। आपका जन्म सम्वत्, वंश-परिचय, इत्यादि बातों पर अभी तक सम्यक् प्रकाश नहीं डाला जा सका। सच तो यह है कि अन्य भक्त कवियों की भाँति नन्ददास ने भी अपने संबंध मे स्वरचित ग्रन्थों में कुछ भी नहीं लिखा। फिर भी कहीं कहीं आप के संबंध में उल्लेख अवश्य मिलते हैं। इन्हीं उल्लेखों तथा अब तक प्राप्त सामग्री के आधार पर नन्ददास जी के जीवन-चरित्र के संबंध में यहाँ कुछ लिखा जायगा।

जीवन-चरित्र

नाभादासकृत भक्तमाल में 'नन्ददास' के संबंध में केवल निम्न-लिखित छप्पय मिलता है:—

> लीला पद रस रीति ग्रन्थ रचना में नागर।
> सरस उक्तियुत युक्ति भक्ति रसगान उजागर।
> प्रचुर पयध लौं सुजस "रामपुर" ग्राम निवासी।
> सकल सुकुल संवलित भक्त पद रेनु उपासी।
> चन्द्रहास अग्रज सुहृद, परम प्रेम पै मै पगे।
> (श्री) नन्ददास आनन्द निधि, रसिक सु प्रभुहित रँगमगे।

श्री ध्रुवदास जी ने 'ध्रुव-सर्वस्व' में आप के यश का वर्णन करते हुए इस प्रकार लिखा है:—

> नन्ददास जो कुछ कह्यो, राग रंग में पागि।
> अच्छर सरस-सनेह-युत, सुनत स्रवन उठि जागि॥

रसिक दशा अद्भुत हुती, करत कवित्त सुढार।
बात प्रेम की सुनत ही, छुटे नैन-जल-धार॥
बौरो सो रस में फिरे, खोजत नेहिन बात।
आछे रस के वचन सुनि, बेगि बिवस ह्वै जात॥

'मूल गोसाईंचरित' के रचयिता श्रीबेणीमाधवदास ने आप को कान्यकुब्ज, 'शेषसनातन' का शिष्य तथा गोस्वामी तुलसीदास जी का गुरुभाई लिखा है —

नन्ददास कनोजिया प्रेम मढ़े। जिन शेषसनातन तीर पढ़े।
सिच्छा गुरुबंधु भये तेहि ते। अति प्रेम सों आन मिले वहि तें।

गोवर्धननाथ जी की 'प्राकट्य की वार्ता' में नन्ददास के संबंध में यह उल्लेख मिलता है कि श्रीनाथ जी की सेविका 'रूपमञ्जरी' से आप की मित्रता थी और उसी के लिए आपने रूपमञ्जरी नामक ग्रन्थ लिखा।

स्वर्गीय बाबू राधाकृष्णदास द्वारा सम्पादित 'रासपञ्चाध्यायी' की भूमिका में 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' से लेकर नन्ददास के संबंध में निम्नलिखित वृत्तान्त प्रकाशित किया गया है —

"नन्ददास सनौढ़िया ब्राह्मण तुलसीदास के छोटे भाई पूर्व देश के रहनेवाले थे। ये दोनों भाई रामानन्द जी के शिष्य थे। नन्ददास जी विषयासक्त भी बहुत थे। नाच-तमाशे में प्रथम पहुँचते थे। एक समय कुछ लोग श्रीरणछोड़ जी (द्वारिका) दर्शन को जाते थे, उनके साथ ये भी तुलसीदास से आग्रह करके दर्शन के लिए चले। मथुरा जी पहुँचकर वहाँ की शोभा देख, मन लुभा गया और यह निश्चय कर कि झटपट द्वारिका जी का दर्शन कर यहाँ लौट आवें और कुछ दिन यहीं आनन्द में बितावें, साथवालों का साथ छोड़ अकेले आगे बढ़े, परन्तु रास्ता भूलकर 'सिहनद' में जा पहुँचे। वहाँ एक खत्री की बहू अपने घर ... में खड़ी बाल सुखा रही थी। उसका रूप देख ये मोहित हो

गये। एक स्थान पर डेरा करके किसी प्रकार रात काटी। सवेरे फिर वहीं पहुँचे, पर उसको न देखा। दिन भर वहां अडे, खडे रहे। सन्ध्या को उस घर की एक लौंडी ने इन्हें बिना अन्न जल खडे रहने का कारण पूछा। नन्ददास ने कहा कि तुम्हारी बहू के दर्शन के लिए मेरी यह दशा है। लौंडी ने जाकर उससे कहा और बहुत समझाया, तब वह झारोखे में आई और नन्ददास देखकर चले गये। यों ही नित्य जाते और उसे देखकर लौट आते। होते होते यह बात सारे नगर में प्रसिद्ध हो गई। उस स्त्री के घरवाला ने बहुत कुछ रोका टोका, पर नन्ददास ने एक न माना और कहा कि बहुत दुख दोगे, तो मैं प्राण दे दूँगा, तुम्हें ब्रह्म-हत्या लगेगी। हार कर उन लोगों ने निश्चय किया कि अब इस स्थान को छोड श्रीगोकुल में चल रहना ही ठीक है, सो गाडी कर बेटा-बहू और लौंडी तथा दो नौकर ले रातारात वे लोग चुपचाप नगर छोडकर चल दिए। सवेरे नन्ददास ने आकर घर में ताला बन्द देखा, तब पता लगा। ये भी गोकुल की ओर चल पडे और रास्ते ही में उन लोगों से जा मिले और उन लोगों के लडने भिडने पर भी दूर दूर पीछे लगे चले। श्रीगोकुल के इस पार पहुँच, वे लोग तो नाव पर पार उतर श्रीगोकुल में गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथ जी के पास चले गये। नन्ददास जी इसी पार बैठे रहे और श्रीयमुना जी की स्तुति करने रहे ('नेककारन जमुने प्रथम आइ' आदि)। श्रीगोसाईं जी ने राज भोग पीछे इन लोगों के प्रसाद लेने के लिए चार पत्तलें धरवाई, तब इन्होंने विनती की कि हम लोग तो तीन ही जन हैं, चार पत्तल किसकी है। श्रीगोसाईं जी ने कहा कि जिस एक वैष्णव को तुम लोग उस पार छोड आये हो, यह उसकी पत्तल है। यह सुन वे लोग बडे लज्जित हुए, तब श्रीगोसाईं जी ने कहा कि तुम लोग घबडाओ मत। अब यह तुम्हें न सतावेगा। और अपने एक सेवक को भेजकर नन्ददास जी को बुलवाया। नन्ददास जी की आंखें श्रीगुसाईं जी के दर्शन करते ही खुल गईं और चरणों पर गिर विनती की, कि महाराज! मैं बडा अधम हूँ। सारा जन्म

विषयवासना में विताया । अब आप अपने शरण में रख, मेरा उद्धार कीजिए । श्रीगुसाईं जी ने श्रीयमुना-स्नान कराके इन्हें इष्ट मंत्र दिया, तब इनके दिव्य चक्षु खुल गये और श्रीगुसाईं की वन्दना में पद बनाया ('जयति रुक्मिनिनाथ पद्मावति प्राणपति विप्रकुल छिप्र आनन्दकारी' आदि)। फिर महाप्रसाद लेने जो बैठे, तो लीला का जो अनुभव हुआ, तो सारी रात बैठे रह गये । पत्तल से न उठे । सवेरे श्रीगुसाईं जी ने आकर कहा—'नन्ददास, उठो, दर्शन का समय हुआ ।' तब उठे और श्रीगुसाईं जी की वन्दना की (प्रात समय श्रीवल्लभसुत को उठतहि रसना लीजिए नाम' आदि)। तब से दर्शन का आनन्द लेते और भगवद्-गुणानुवाद में लगे रहते । तुलसीदास जी ने यह समाचार सुन, नन्द-दास जी को पत्र लिखा । तब इन्होंने उत्तर दिया कि मैं क्या करूँ, आपने तो मेरा विवाह श्रीरामचन्द्र जी से कर दिया था, पर बीच में जबरदस्ती श्रीकृष्ण ने आकर लूट लिया । अब तो सर्वस्व उनके अर्पण कर चुका । नन्ददास जी ने समग्र दशम स्कंध भागवत की लीला छन्दोबद्ध भाषा में की थी । उसे देख मथुरा के कथा कहनेवाले ब्राह्मणों ने आकर श्रीगुसाईं जी से विनती की कि इस ग्रन्थ से हम लोगों की जीविका मारी जायगी । तब श्रीगुसाईं जी की आज्ञा से 'रासपंचाध्यायी' मात्र रखकर और सब ग्रन्थ श्रीयमुना जी में पधरा दिया । एक दिन तानसेन ने नन्ददास का बनाया 'रासलीला' का पद (देखो देखो री नागर नट निर्तन कालिन्दी तट आदि) अकबर के सामने गाया । अकबर ने नन्द-दास को बुलाया और पूछा कि आपने इस पद में गाया है कि 'नन्द-दास गावै तहाँ निपट निकट' सो आप कैसे निपट निकट पहुँचे ? नन्ददास जी ने कहा कि इसका भेद अपनी अमुक लौंडी से पूछो । बादशाह ने महल में जाकर उस लौंडी से पूछा । वह लौंडी परम वैष्णवी थी और उसे श्रीनाथ जी के दर्शन होते थे, तथा उससे नन्ददास जी से बड़ा स्नेह था । बादशाह की बात सुनते ही वह मूर्छित होकर गिरी और शरीर छोड़ दिया । इधर नन्ददास जी ने भी शरीर छोड़ दिया ।

बादशाह यह चरित्र देख मस्त हो गया। श्रीगुसाईं जी ने जब यह समाचार सुना, तब बड़ी सराहना की।"

गार्सां द तासी ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास* में नन्ददास के संबंध में निम्नलिखित विवरण दिया है:—

"गीत-गोविन्द के ढंग पर नन्ददास ने 'पंचाध्यायी' (रास-पंचाध्यायी) की रचना की है। इसमें राधाकृष्ण की प्रेम-लीला की ही प्रधानता है। मदनपाल द्वारा सम्पादित पंचाध्यायी का एक संस्करण बाबूराम के लीथो प्रेस, कलकत्ता से प्रकाशित हुआ है। इसमें केवल ५४ पृष्ठ हैं।"

सं० १९९० में 'सुकवि-सरोज' नामक एक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। इसमें सनाढ्य जाति के साहित्यप्रेमियों का परिचय और उनकी कविता के उदाहरण दिए गए हैं। इसमें 'रामचरित-मानस' के रचयिता गोस्वामी तुलसीदास तथा नन्ददास भाई भाई एवं सनाढ्य ब्राह्मण माने गए हैं। इसके अनुसार नन्ददास का जन्म संवत् १५६४ के लगभग सोरों जिला एटा के समीपस्थ रामपुर नगर में हुआ था। नन्ददास के पिता रामपुर से हटकर सोरों के योगमार्ग मुहल्ले में रहने लगे। बाद में नन्ददास ने धन-सम्पन्न होकर रामपुर को फिर से प्राप्त किया और उसका नाम बदल कर श्यामपुर रख दिया। नन्ददास के पुत्र का नाम कृष्णदास था और वह अपने चाचा तुलसीदास को बुलाने राजापुर गया; किन्तु वे आए नहीं।

'भक्तमाल' की रचना संवत् १६४२ के बाद नाभादास जी ने की थी। इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता के संबंध में अब तक किसी विद्वान् ने कोई आक्षेप नहीं किया है। इसके अतिरिक्त नन्ददास के समकालीन होने के कारण इस ग्रन्थ में दी हुई बातें अपेक्षाकृत अधिक मूल्यवान्

*"इस्त्वार द ला लितरेत्योर इंदुई ए इन्दुस्तानी," प्रथम संस्करण, पृष्ठ ३८७-३८८।

हैं। ऊपर 'भक्तमाल' से जो छप्पय उद्धृत किया गया है, उससे नन्ददास की जीवनी-संबंधी निम्नलिखित तीन बातें ज्ञात होती हैं:—(१) नन्ददास रामपुर गाँव के रहनेवाले थे; (२) वह उच्चकुल (अथवा सुकुल आस्पद) के थे; और (३) चन्द्रहास इनके बड़े भाई थे, या ये चन्द्रहास के बड़े भाई थे, अथवा ये चन्द्रहास के बड़े भाई के मित्र थे।

श्री ध्रुवदास जी के दोहों से (जो ऊपर उद्धृत किये जा चुके हैं) केवल इतना ही परिलक्षित होता है कि नन्ददास एक सुकवि थे तथा प्रेम की चर्चा सुनकर पुलकित हो उठते थे।

'मूल गोसाईंचरित' तथा 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' में, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, नन्ददास जी को गोस्वामी तुलसीदास का भाई बतलाया गया है। इन्हीं ग्रन्थों की प्रामाणिकता के आधार पर सुकवि-सरोजकार तथा अन्य कई लेखकों ने नन्ददास को तुलसीदास का भाई लिखा है।

नन्ददास और तुलसीदास

किन्तु अनुसन्धान से 'मूल गोसाईंचरित' तथा 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' दोनों क्षेपक ग्रन्थ प्रतीत होते हैं। मूल गोसाईंचरित की ऐतिहासिकता पर विचार करते हुए श्री माताप्रसाद गुप्त एम० ए० ने अपने 'तुलसी-सन्दर्भ' नामक पुस्तक के २३वें पृष्ठ पर लिखा है:—

"वेणीमाधवदास लिखते हैं कि मीन की सनीचरी के उतरते ही (मीन की सनीचरी का अन्त १६४२ वि० के ज्येष्ठ में हुआ था) काशी में मरी का प्रकोप हुआ। उसे गोसाईं जी ने भगवान् से विनय करके भगा दिया। मरी के पीछे ही केशवदास गोस्वामी जी के दर्शनार्थ आए और एक ही रात्रि में उन्होंने रामचन्द्रिका ऐसे बड़े काव्यग्रन्थ की रचना कर डाली। इस प्रकार 'मूल गोसाईंचरित' के अनुसार जान पड़ता है, रामचन्द्रिका की रचना संवत् १६४३ के लगभग हुई है; किन्तु यह नितान्त अशुद्ध है; क्योंकि उक्त ग्रन्थ में ही स्पष्ट शब्दों में लिखा हुआ है कि उसकी रचना संवत् १६५८ में कार्तिक सुदी १२ बुधवार

को समाप्त हुये, इसे इन्द्रजीतसिंह ने बनवाया था। अतएव 'मूल गोसाईं-चरित' का उल्लेख इस विषय में अत्यन्त अपूर्ण ज्ञात पड़ता है।"

'मूल गोसाईं-चरित' की ऐतिहासिकता पर विचार करने का एक और ढंग है। वह है इसके व्याकरण के ढाँचे का अध्ययन। इस प्रकार के अध्ययन से इसके काल-निर्णय में अमूल्य सहायता मिलती, किन्तु स्थानाभाव से यहाँ इस बात का प्रयत्न न किया जा सकेगा। मेरा तो इस ग्रन्थ के विषय में यही अनुमान है कि गोस्वामी जी की मृत्यु के बहुत दिनों पश्चात् इसका निर्माण हुआ और उसके कर्त्ता ने तुलसीदास जी के संबंध में उस समय तक प्रचलित समस्त किंवदन्तियों का समावेश इसमें अत्यन्त चतुरता के साथ कर दिया है।"

इसी प्रकार 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्त्ता' की ऐतिहासिक प्रामाणिकता पर डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा एम० ए० का एक बहुत ही सारगर्भित लेख 'हिन्दुस्तानी' पत्रिका में अप्रैल १६३२ में प्रकाशित हुआ है। उसका शीर्षक है—"क्या 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्त्ता' गोकुलनाथ कृत है?" उस लेख में डाक्टर साहब लिखते हैं—"अब मैं एक ऐसा प्रमाण देना चाहता हूँ, जो व्यापक रूप से समस्त ग्रन्थ पर लागू होता है और जिसमें स्पष्ट रीति से यह सिद्ध हो जाता है कि ८४ वार्त्ता तथा २५२ वार्त्ता के रचयिता दो भिन्न भिन्न व्यक्ति थे और २५२ वार्त्ता निश्चित रूप से सत्रहवीं शताब्दी के बाद की रचना है। 'व्रजभाषा का विकास' शीर्षक खोज-ग्रन्थ की सामग्री जमा करते समय मैंने चौरासी तथा दो सौ बावन वार्ताओं के व्याकरण के ढाँचों का भी अध्ययन किया था। इस अध्ययन से मुझे यह बात आश्चर्यजनक मालूम हुई कि इन दोनों वार्ताओं के व्याकरण के अनेक रूपों में बहुत अन्तर है।"

इसके बाद व्याकरण के रूपों तथा वाक्यों की तुलना करते हुए, वर्मा जी इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि दो सौ बावन वार्त्ता गोकुलनाथ

कृत नहीं हो सकती। कदाचित् चौरासी वार्ता के अनुकरण में सत्रहवीं शताब्दी के बाद किसी वैष्णव भक्त ने इसकी रचना की होगी।

वार्ता की प्रामाणिकता पर दूसरे ढंग से विचार करते हुए हिन्दी के विद्वान आलोचक तथा इतिहास लेखक पंडित रामचन्द्र शुक्ल भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं। आप अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखते हैं—

"गोस्वामी जी का नन्ददास जी से कोई सम्बन्ध न था, यह बात पूर्णतया सिद्ध हो चुकी है। अतः उक्त वार्ता की बातों को, जो वास्तव में भक्तों का गौरव प्रचलित करने और वल्लभाचार्य्य की गद्दी की महिमा प्रकट करने के लिए पीछे से लिखी गई हैं प्रमाण कोटि में नहीं ले सकते।"

ऊपर वार्ता की प्रामाणिकता के विषय में लिखा जा चुका। अब यह बात स्पष्ट हो जाती है कि केवल साम्प्रदायिक गौरव को स्थापित करने के लिए वार्ता में तुलसीदास से नन्ददास जी के भाई होने का सम्बंध जोड़ा गया है, पर वास्तव में नन्ददास जी का तुलसीदास जी के साथ कोई सम्बंध नहीं था। ऐसा जान पड़ता है कि गोस्वामी तुलसीदास जी की अत्यधिक प्रतिष्ठा समृद्धि होते देखकर पीछे से किसी वैष्णव भक्त ने उनका नन्ददास जी के साथ इस प्रकार का सम्बंध जोड़ दिया है।

अस्तु। अब तक उपलब्ध सामग्री के आधार पर नन्ददास के सम्बन्ध में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि गोसाईं विट्ठलनाथ का शिष्यत्व ग्रहण करने के पूर्व आपका जीवन वासनात्मक था। किन्तु इसके बाद तो वे कृष्णप्रेम की ओर इतने आकृष्ट हुए कि उनकी गणना अष्टछाप* में होने लगी। आप 'रामपुर' गाँव के रहनेवाले उच्चकुल (अथवा सुकुल

* अष्टछाप के अन्तर्गत निम्नलिखित भक्त कवियों के नाम आते हैं —

(१) श्रीसूरदास, (२) श्रीकृष्णदास, (३) श्रीपरमानन्ददास, (४) श्रीकुंभनदास, (५) श्रीचतुर्भुजदास, (६) श्रीनन्ददास, (७) श्रीगोविन्द स्वामी (८) श्रीछीत स्वामी।

इनमें से प्रथम चार श्रीवल्लभाचार्य के तथा शेष चार श्रीविट्ठलनाथ जी के शिष्य थे।

आसद) के थे, और आपके भ्राता का नाम चन्द्रहास था अथवा आप चन्द्रहास के बड़े भाई के मित्र थे। पुष्टिमार्गीय हो जाने के पश्चात् आप श्रीनाथ जी की सेवा करते हुए गोवर्धन तथा गोकुल में रहने लगे। श्रीनाथ जी की सेविका रूप-मंजरी से आप की मित्रता थी। आप गोसाईं विट्ठलनाथ तथा सूरदास के समकालीन थे; अतएव इनके का के सम्बन्ध में हम इतना ही कह सकते हैं कि ये १६ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में वर्त्तमान थे।

नन्ददास जी ने कुल कितने ग्रन्थ लिखे हैं, इस विषय में अभी तक पूरा पूरा पता नहीं चला है। अब तक जो खोज हुई है उसी के आधार

नन्ददास की रचनायें

पर यहाँ कुछ लिखा जाता है। काशी नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित खोज की रिपोर्टों से आप के निम्न-लिखित १५ ग्रन्थों का पता लगता है :—

(१) 'अनेकार्थ-मंजरी'
(२) 'नाममाला'
(३) 'नासिकेतपुराण भाषा'
(४) 'दशमस्कंध'
(५) 'पंचाध्याई'
(६) 'भँवरगीत'
(७) 'भागवत'
(८) 'मानमंजरी'
(९) 'रसमंजरी'
(१०) 'रूपमंजरी'
(११) 'विरहमंजरी'
(१२) नाम-चिंतामणिमाला'
(१३) 'जोगलीला'
(१४) 'श्याम-सगाई'; और
(१५) 'रुक्मिनी-मंगल'

'गार्सां द तासी' ने अपने ग्रन्थ में नन्ददास के केवल चौदह ग्रन्थों के नाम और विवरण दिए हैं। इनमें से दस तो खोज-रिपोर्टों वाले १, २, ४, ५, ६, ८, ९, १०, १३ व १५ नं० के ग्रन्थ हैं। जिन चार और नए ग्रन्थों का उल्लेख तासी ने किया है उनके नाम नीचे दिए जाते हैं:—

(१) 'सुदामाचरित्र'
(२) 'प्रबोध-चन्द्रोदय नाटक'
(३) 'गोवर्धनलीला'
(४) 'रासमंजरी'

खोज के ग्रन्थ नं० ३,७,११,१२ तथा १४ के नाम तासी की पुस्तक में मौजूद नहीं हैं। ठाकुर शिवसिंह ने अपने 'सरोज' में नन्ददास के सात ग्रन्थों के नाम दिए हैं। इनमें से ऊपर दिए गए ग्रन्थों के अतिरिक्त दो और नए ग्रन्थ 'दानलीला' तथा 'मानलीला' के नाम मिलते हैं। इसी प्रकार 'मिश्रबंधु-विनोद' में भी नंददास के दो और नवीन ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है। इनके नाम 'ज्ञानमंजरी' और 'विज्ञानार्थ-प्रकाशिका' हैं। 'विज्ञानार्थ-प्रकाशिका' संस्कृत ग्रन्थ की ब्रजभाषा टीका बतलाई गई है। 'सुकविसरोज' के संपादक ने नंददास के एक और नवीन ग्रन्थ 'हितोपदेश' का उल्लेख किया है।

इस प्रकार नंददास द्वारा रचित कुल चौबीस ग्रन्थों का पता लगता है। किन्तु खोज से पता चला है कि इनमें से 'नाममाला', 'नाम-चिन्तामणि-माला' तथा 'मानमंजरी' ये तीन भिन्न-भिन्न पुस्तकें नहीं हैं, किन्तु वास्तव में एक ही पुस्तक के ये तीन भिन्न-भिन्न नाम हैं। नंददास की एक नवीन रचना 'सिद्धान्त-पंचाध्यायी' की हस्तलिखित प्रति का भी पता चला है। अस्तु। एक नामवाले दो ग्रन्थों को निकाल देने से तथा 'सिद्धान्तपंचाध्यायी' को भी सम्मिलित कर लेने से नंददास द्वारा विरचित कुल तेईस ग्रन्थ होते हैं। इन ग्रन्थ-रत्नों में

में अब तक 'अनेकार्थ मंजरी', 'नाम-माला', 'रास-पंचाध्यायी', 'भँवर-गीत', 'रुक्मिणी-मंगल' और 'स्याम सगाई' ये छः ग्रन्थ मुद्रित हो चुके हैं।

किसी कवि के मानसिक विकास एवं उसकी काव्यकला के अध्ययन के लिए उसकी रचनाओं का कालक्रम के अनुसार अध्ययन आवश्यक होता है; किन्तु अब तक उपलब्ध सामग्री के आधार पर नन्ददास की रचनाओं का कालक्रम-चक्र बनाने में हम सफल नहीं हो सके। इस प्रकार के चक्र के अभाव में यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि पंचाध्यायी की रचना कब हुई। किन्तु इस ग्रन्थ के आरम्भ में ही कवि ने इसकी रचना के संबंध में एक कारण दिया है:

रासपंचाध्यायी की रचना के कारण

परम रसिक इक मित्र मोहि तिन आग्या दीनी।
ताही तें यह कथा जथा-मति भाषा कीनी॥

नन्ददास जी का यह मित्र कौन था? यह कहीं 'चन्द्रहास' के बड़े भाई तो नहीं थे? कुछ लोगों का अनुमान है कि विट्ठलनाथ जी की शिष्या 'गंगाबाई' तथा नन्ददास जी में घनिष्ठ मैत्री थी और उन्हीं के कहने पर उन्होंने रासपंचाध्यायी की रचना की। केवल अनुमान तथा कल्पना पर ही अवलम्बित होने से इसके संबंध में निश्चितरूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

पंचाध्यायी के प्रथम अध्याय के आरम्भ में संसार-दुःखों से संतप्त प्राणियों के लिए श्रीमद्भागवत को प्रगट करने वाले करुणासागर श्रीशुकदेव जी के नख शिख का वर्णन है। तत्पश्चात् कवि ने वृन्दावन का एक अत्यन्त आदर्श तथा रमणीक वन के रूप में वर्णन करते हुए विविध आभूषणों से अलंकृत किशोर श्रीकृष्णचन्द्र के सौन्दर्य को अंकित किया है। इसके बाद ही शरद् रजनी तथा चन्द्रोदय का वर्णन नितान्त स्वाभाविक ढंग से किया गया है। इसी समय चराचर को

रासपंचाध्यायी का कथानक

चतुर्थ अध्याय में श्रीकृष्ण के पुनः प्रकट होने का वर्णन है। गोपियाँ परम उत्सुकता एवं उमंग के साथ उनसे मिलती हैं और अत्यन्त प्रसन्न होती हैं। इसका चित्रण स्वाभाविक तथा मनोमोहक है। मुसकाती हुई गोपियाँ श्रीकृष्ण से व्यंगपूर्वक पूछती हैं कि आप इतना कष्ट क्यों देते हैं? तब श्रीकृष्णजी अपने को गोपियों का परम ऋणी बतलाते हैं और अपने इस प्रकार के व्यवहार के लिये उनसे क्षमा-याचना करते हैं।

पंचाध्यायी के पाँचवें अध्याय में कवि ने कृष्ण की रासलीला का बड़ा ही मनोरम चित्र खींचा है। वर्णन इतना सजीव है कि रास का दृश्य नेत्रों के सम्मुख उपस्थित हो जाता है। आगे चल कर यह रास-लीला जलक्रीड़ा में परिणत हो जाती है और इसके पश्चात् प्रातःकाल के पूर्व 'ब्राह्म मुहूर्त' में गोपियाँ अपने अपने घर प्रस्थान करती हैं। अन्त में 'फलस्तुति-वर्णन' के साथ-साथ इस ग्रन्थ की समाप्ति होती है।

रास-पंचाध्यायी के कथानक का आधार

नन्ददास-कृत रासपंचाध्यायी के कथानक का मुख्य आधार श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध का पूर्वार्ध-अध्याय उन्तीस से लेकर अध्याय तेतीस तक है। श्रीमद्भागवत के रास-सम्बन्धी ये पाँच अध्याय अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। नन्ददास जी की पंचाध्यायी का विषय एवं क्रम भी सर्वथा श्रीमद्भागवत के अनुसार है और कहीं कहीं इसके पद भागवत के श्लोकों से बहुत मिलते हैं। इस विषय पर आगे पूर्णतया विचार किया जायगा।

रास-पंचाध्यायी का दूसरा आधार हरिवंश पुराण माना जाता, क्योंकि उस पुराण के विष्णु-पर्व में इसी रास का वर्णन है जिसका वर्णन नन्ददास जी ने अपनी पंचाध्यायी में किया है। पुराण में उसका नाम "हल्लीस-क्रीड़न" दिया गया है। इसी रास के आधार पर हम रास-पंचाध्यायी को हरिवंश पुराण का ऋणी मान सकते हैं।

'पंचाध्यायी का तृतीय आधार जयदेव का 'गीतगोविन्द' कहा जाता है। यद्यपि गीतगोविन्द और रास-पंचाध्यायी के कथानक में आकाश-पाताल का अन्तर है, तथापि दोनों की प्रवाह-गति, मधुरता और शैली एक ही साँचे में ढली हुई है। नन्ददास जी ने कदाचित् गीतगोविन्द के माधुर्य के वशीभूत होकर ही अपने काव्य की रचना की है। दोनों की मधुरता का ढंग एक ही है।

ऊपर हम रास-पंचाध्यायी के कथानक के आधार पर विचार कर चुके हैं। अब यहां इस बात पर विचार करना है कि पंचाध्यायी श्रीमद्भागवत पर कहां तक अवलम्बित है। इस बात को निश्चित रूप से कहना अत्यन्त कठिन है कि पंचाध्यायी की रचना में नन्ददास ने 'हरिवंशपुराण' तथा 'गीतगोविन्द' से कितनी सहायता ली है; किन्तु इसमें लेश मात्र भी सन्देह नहीं कि इसकी रचना के समय कवि के सम्मुख पुष्टिमार्गियों के मान्य ग्रन्थ श्रीमद्भागवत के रासक्रीड़ा-सम्बन्धी अध्याय सदैव वर्तमान रहे। इस कथन के प्रमाण-स्वरूप नीचे कुछ उद्धरण दिये जाते हैं—

रास पंचाध्यायी तथा श्रीमद्भागवत

ताही छिन उडराज उदित रस रास सहायक।
कुंकुम-मंडित प्रिया-वदन जनु नागर नायक॥

रा० पं० अ० १—२१

तदोडुराजः ककुभः करैर्मुखं प्राच्या विलिम्पन्नरुणेन शंतमैः।
स चर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन्प्रियः प्रियाया इव दीर्घदर्शनः॥

श्री० भा० दश० स्कं० पूर्वा० अ० २६-२

कोउ तरुनी गुन-मैं शरीर निज मग चली झुकि।
मात पिता पति बन्धु रहे झुकि झुकि न रहीं रुकि॥

रा० पं० अ० १—६८

ता वार्यमाणाः पतिभिः पितृभिर्भ्रातृबन्धुभिः।
गोविन्दापहृतात्मानो न न्यवर्तन्त मोहिताः॥

श्री० भा० दश० स्कं० पूर्वा० अ० २६—८

इहि विधि बन-बन ढूँढ़ि पूँछि उनमत की नाईं।
करन लगीं मन-हरन-लाल-लीला मनभाईं॥

—रा० प० अ० २-२१

इत्युन्मत्तवचो गोप्यः कृष्णान्वेषणकातराः।
लीला भगवतस्तास्ता ह्यनुचक्रुस्तदात्मिकाः॥

—श्री० भा० दश० स्क० पूर्वा० अ० ३०-१४

कासि कासि पिय महाबाहु, यौं बदति अकेली।
महाविरह की धुनि सुनि रोवत खग मृग बेली॥

—रा० प० अ० २-४५

हा नाथ रमणप्रेष्ठ क्वासि क्वासि महाभुज।
दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय संनिधिम्॥

—श्री० भा० दश० स्क० पूर्वा० अ० ३०-३९

संतत-भैं तैं अभै करन, कर कमल तिहारौ।
का घटि जैहै नाथ तनक सिर छुवत हमारौ॥

—रा० पं० अ० ३-१५

विरचिताभयं वृष्णिधुर्य ते चरणमीयुषां संसृतेर्भयात्।
करसरोरुहं कान्त कामदं शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम्॥

—श्री० भा० दश० स्क० पूर्वा० अ० ३१-५

तब तिनहीं मैं प्रगट भए नँदनंदन पिय यौं।
दृष्टिबंद करि दुरै बहुरि प्रगटै नटवर ज्यौं॥
पीत-बसन-बनमाल धरैं, (लएँ) मंजु-मुरली हथ।
मंद-मंद मुसिकात, निपट मनमथ के मन-मथ॥

—रा० पं० अ० ४-२, ३

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः॥

—श्री० भा० दश० स्क० पूर्वा० अ० ३२-२

एक भजते कों भजे, एक बिनु भजते भजहीं।
कहो कृष्ण ये कौन आहि जो दोउन तजहीं॥
—रा० पं० अ० ४-२२

भजतोऽनुभजन्त्येके एक एतद्विपर्ययम्।
नोभयांश्च भजन्त्येक एतन्नो ब्रूहि साधु भोः॥
—श्री० भा० दश० स्क० पूर्वा० अ० ३२-१६

रतनावलि-मधि नील-मनी अदभुत झलकै जस।
सकल-तियन के संग साँवरो पिय सोभित अस॥
—रा० पं० अ० ५-६

तत्रातिशुशुभे ताभिर्भगवान्देवकीसुतः।
मध्ये मणीनां हैमानां महामरकतो यथा॥
—श्री० भा० दश० स्क० पूर्वा० अ० ३३-७

धार जमुनजल धंसे, लसे छवि परहि न बरनी।
विहरत ज्यौं गजराज, संग लै तरुनी-करनी॥
—रा० पं० अ० ५-४६

ततश्च कृष्णोपवने जलस्थलप्रसूनगन्धानिलजुष्टदिक्तटे।
चचार भृङ्ग प्रमदागणावृतो यथामदच्युद्द्विरदः करेणुभिः॥
—श्री० भा० दश० स्क० पूर्वा० अ० ३३-२५

मौलिकता

इन ऊपर के उद्धरणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पञ्चाध्यायी की रचना में नन्ददास ने श्रीमद्भागवत के रास-क्रीडा-सम्बन्धी पंचाध्यायी की अध्यायों से कहाँ तक सहायता ली है। स्थान-सकोच के कारण बहुत से उद्धरण ऊपर नहीं दिये जा सके, फिर भी यहाँ पर इतने ही उदाहरण पर्याप्त हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या पचाध्यायी श्रीमद्भागवत का रूपान्तर मात्र है? इसके उत्तर मे इतना ही कहा जा सकता हैं कि पंचाध्यायी का तृतीय अध्याय श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध पूर्वार्ध के ३१ वे अध्याय पर बहुत कुछ

अवलम्बित है; किन्तु शेष अध्यायों की पद-रचना में भी यत्र तत्र कवि ने भागवत का यथेच्छ अनुकरण किया है। इतना होने पर भी पंचाध्यायी की मौलिकता अक्षुण्ण है। प्रथम अध्याय में श्री शुकदेव जी का नख-शिख वर्णन, वृन्दावन का दृश्य-चित्रण तथा अनंग-आगमन इत्यादि प्रसंगों से नन्ददास की मौलिकता और प्रतिभा का पूर्ण परिचय मिलता है।

इसी प्रकार पंचाध्यायी के चतुर्थ अध्याय के अन्त में गोपियों के प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान् अपने को उनका ऋणी बतलाते हैं; किन्तु श्रीमद्भागवत में आप केवल उनकी प्रशंसा करके ही सन्तोष कर लेते हैं। पंचाध्यायी के पंचम अध्याय का फलस्तुतिवर्णन तो इसे सर्वथा एक स्वतंत्र ग्रन्थ सिद्ध कर देता है। श्रीमद्भागवत में यह अंश नहीं है। वहाँ तो राजा परीक्षित श्री शुकदेव जी से यह प्रश्न करते हैं कि धर्म-संस्थापक साक्षात् ईश्वर के अवतार भगवान् कृष्ण-चन्द्र ने परस्त्रियों के साथ इस प्रकार का आचरण कैसे किया :—

संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमायेतरस्य च।
अवतीर्णो हि भगवानंशेन जगदीश्वरः॥
स कथं धर्मसेतूनां वक्ता कर्ताऽभिरक्षिता।
प्रतीपमाचरद् ब्रह्मन्परदाराभिमर्शनम्॥
आप्तकामो यदुपतिः कृतवान्वै जुगुप्सितम्।
किमभिप्राय एतं नः संशयं छिन्धि सुव्रत॥

श्री० भा० दश० स्क० पूर्वा०अ० ३३-२७, २८, २९

इसके समाधान में श्री शुकदेव जी कहते हैं कि तेजस्वी पुरुषों को किसी प्रकार दोष नहीं लगता। वे तो सर्वभक्षण करने वाली अग्नि के समान सर्वथा स्वतंत्र हैं :—

धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणां च साहसम्।
तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा॥

श्री० भा० दश० स्क० पूर्वा० अ० ३३-३०

रास क्रीड़ा-सम्बन्धी अन्तिम अध्याय को समाप्त करते हुए श्रीमद्भागवतकार कहते हैं, कि जो 'ब्रज-वधुओं' तथा 'विष्णु' की क्रीड़ा-सम्बन्धी कथा को श्रद्धापूर्वक सुनते तथा वर्णन करते हैं वे परा भक्ति को प्राप्त करके भव-रोग से मुक्त हो जाते हैं —

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः,
श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद्यः ।
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं,
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥

नन्ददास भी पंचाध्यायी की समाप्ति इसी प्रकार करते हैं —

इहि उज्जल-रस माल, कोटि जतनन करि पोई ।
सावधान है पहिरो, वर तोरो मनि कोई ॥
स्रवन, कीरतन, ध्यान-सार, सुमिरन को है पुनि ।
ग्यान सार, हरिध्यान सार, स्रुति सार, गुहो गुनि ॥
अघ-हरनी, मन हरनी, सुन्दर प्रेम वितरनी ।
"नन्ददास" के कंठ बसो, नित मंगल करनी ॥

भागवत की रास-लीला सम्बन्धी कथा हिन्दी के मध्यकालीन कवियों का इतना प्रिय विषय रहा है कि कई कवियों ने उसे लिखकर अपनी लेखनी को पवित्र किया है। नन्ददास ही की भाँति सोमनाथ कवि ने भी 'रास-पंचाध्यायी' की रचना की है। श्रीमद्भागवत पर ही अवलम्बित होने के कारण दोनों कवियों के वर्णन प्रायः एक से हैं और कहीं कहीं यह कहना अत्यन्त कठिन हो जाता है कि किसका वर्णन उत्कृष्ट है। इतने पर भी सोमनाथ की पंचाध्यायी अब तक अप्रकाशित ही है। तुलना के लिये दोनों कवियों के कतिपय पदों को नीचे उद्धृत किया जाता है।

नन्ददास तथा सोमनाथ

भगवान कृष्ण के रास का वर्णन करते हुए चन्द्रोदय का वर्णन प्रायः एक सा ही किया है.

ताही छिन उडुराज उदित, रस-रास-सहायक।
कुंकुम-मण्डित प्रिया-वदन, जनु नागर-नायक॥
कौमल-किरन अरुन नभ वन में व्यापि रही यौं।
मनसिज खेलयौ फागु, घुमगि घुरि रह्यौ गुलाल ज्यौं॥

(नन्ददास)

कियौ मनोरथ रमन कौ, निज माया अपनाय,
ता छन चन्द उदै भयौ, पूरव दिशा रचाय।
बड़ी बेर में तिय मिली, यातैं हिय हुलसाय,
नायक मनु मुख-मंडलहिं, दिय कुमकुम लपटाय।

(सोमनाथ)

गोपियों के अधीर होने का वर्णन भी दोनो कवियों का उत्कृष्ट एवं समान ही हुआ है :—

ते पुनि तिहिं मग चलीं, रँगीली तजि गृह-संगम।
जनु पिंजरन तैं छुटे, छुटे नव-प्रेम विहंगम॥
कोउ तरुनी गुन-मै सरीर, तिन संग चली कुढ़ि।
मात पिता पति बन्धु रहे झुकि, झुकि न रही रुकि॥
सावन सरिता रुकै कहूँ करौ कोटि-जतन-अति;
कृष्ण हरे जिन के मन ते क्यों रुकै अगम-गति।

(नन्ददास)

खैंचि लियौ मन कुंज विहारी,
लोक-लाज ब्रज-तियन विसारी।
निज-निज गृह तैं इहि विधि ढारीं,
सिन्धुहिं मिलन सरित ज्यौं सगरीं।
जनु पिंजरन तैं छुटी चिरैयाँ,
विविध रंग नहि थिरैं थिरैयाँ।

पति पितु मातु बन्धु की हटकी,
रहि न सकी स्याम सों अटकी ।
(सोमनाथ)

भारतीय साहित्य में जितना कृष्ण-चरित्र जटिल एवं गम्भीर है उतना सम्भवतः दूसरा नहीं। यदि महाभारत में श्रीकृष्ण एक चतुर पचाध्यायी में कृष्ण राजनीतिज्ञ तथा महान् दार्शनिक के रूप में वर्तमान का स्वरूप हैं तो श्रीमद्भागवत तथा हरिवंश पुराण में उनका शान्तिमय रूप हो जाता है। लोक कल्याण के लिए वे अनेक असुरों का संहार करते हैं। आगे चलकर पुराणों में ही कृष्ण के लीलामय रूप का भी दर्शन होता है और वास्तव में भाषा साहित्य का इसी रूप से सम्बन्ध है।

भाषा-साहित्य में कृष्ण का एक रूप हम मैथिल कोकिल विद्यापति में मिलता है। आप ने संस्कृत में कोमल कान्त-पदावली के अधिनायक अमर कवि जयदेव के आदर्श पर ही राधा तथा कृष्ण के प्रेम को अंकित किया है जिसमें प्रधान रूप से शृङ्गार-रस की अभिव्यञ्जना हुई है। विद्यापति के प्राय: अधिकांश पद एक मात्र लौकिक प्रेम के ही अंग प्रत्यंग स्वरूप हैं किन्तु आपने कतिपय ऐसे पदों की भी रचना की है जिसमें राधाकृष्ण के अलौकिक प्रेम का वर्णन है। मिथिला में विद्यापति चाहे भले ही वैष्णव कवि के रूप में प्रख्यात न हों, किन्तु चंडीदास के पथ प्रदर्शक होने के कारण आप बंगाल में वैष्णव तथा भक्त कवि ही के नाम से विख्यात हैं।

भगवान् कृष्ण के इस रूप का दर्शन हम पन्द्रहवीं तथा सोलहवीं शताब्दी में होता है। इस काल में कृष्ण भक्ति की एक लहर समस्त भारत को आप्लावित कर देती है। श्रीमद्भागवतकार ने वासुदेव भक्ति को वेद, यज्ञ, ज्ञान तथा तप आदि से श्रेष्ठ बतलाया है—

वासुदेव परा वेदा वासुदेव परा मखा ।
वासुदेव परा योगा वासुदेव परा क्रिया ॥

वासुदेव परं ज्ञानं वासुदेव परं तपः ।
वासुदेव परो धर्मो वासुदेव परा गतिः ॥

वास्तव में इस युग में भागवतकार की उपर्युक्त प्रकार का अक्षरशः पालन हुआ। हम इसे 'भक्तियुग' कह सकते हैं। इस युग में वृन्दावन वैष्णव धर्म का केन्द्र बना जिसके फलस्वरूप ब्रजभाषा में अनेक भक्त कवि उत्पन्न हुए। सूरदास तथा नन्ददास इन कवियों में अग्रगण्य थे। आगे चलकर 'रीति काल' में कृष्ण के इस रूप में भी परिवर्तन हुआ। इस काल में वे भक्तों के आराध्य देव न होकर नायक बन गये और राधा नायिका बन गई। रीतिकाल के समस्त कवियों—जैसे बिहारी तथा देव आदि ने भगवान कृष्ण को इसी रूप में अंकित किया और 'कन्हैया' शब्द एक प्रकार से 'नायक' का पर्यायवाची हो गया। श्रेणी विभाजन की दृष्टि से हम इसे कृष्ण का तीसरा रूप कह सकते हैं।

कविवर नन्ददास ने भगवान कृष्ण के दूसरे रूप को ही ग्रहण किया है। वे वास्तव में एक भक्त कवि हैं। शृंगार रस का प्राचुर्य होने के कारण कतिपय आलोचक उनके काव्य में लौकिक पक्ष की प्रधानता मानते हैं, किन्तु यदि विचार करके देखा जाय तो नन्ददास एक धार्मिक कवि थे। 'पुष्टिमार्ग' से उन्हें कृष्ण चरित का जो सुन्दर अंश प्राप्त हुआ था, उसी ने उन्हें काव्य-रचना की ओर प्रेरित किया। इसलिए पारलौकिक पक्ष का सर्वथा त्याग कर केवल लौकिक दृष्टि से ही नन्ददास पर विचार करना उनके साथ अन्याय करना होगा। नीचे इन्हीं दोनों दृष्टियों से नन्ददास कृत 'रास पंचाध्यायी' पर विचार किया जायगा।

लौकिक दृष्टि से पंचाध्यायी संयोग शृङ्गार की एक सजीव रचना है जिसमें कृष्ण तथा गोपियों की रासक्रीडा का वर्णन है। सुधा वर्षिणी मुरली ध्वनि सुन ज्योत्स्ना विमंडित रात्रि में गोपियां उत्सुक होकर कृष्ण दर्शन के लिए घर से निकल पड़ती हैं। प्रेम में तल्लीन होने के कारण उन्हें लोक-मर्यादा का

पंचाध्यायी में
लौकिक पक्ष

ध्यान तक नहीं रहता। वे कृष्ण के सन्निकट पहुँच कर उनके चारों ओर खड़ी हो जाती हैं। इसी समय चतुर नायक, लीला प्रिय, श्रीकृष्ण को कुछ 'रसना' सूझती है। वे गोपियों को स्त्री धर्म की शिक्षा देकर उन्हें घर लौट जाने के लिए कहते हैं। गोपियों को कृष्ण के इस व्यवहार से बड़ा आघात पहुँचता है। वे स्तब्ध होकर खड़ी हो जाती हैं। उनके बिम्बोष्ठ मुरझा जाते हैं तथा विरह के कारण वे दीर्घ निश्वास लेने लगती हैं—

जबै कह्यो पिय जाउ, अधिक चित चिंता बाढ़ी।
पुतरिन की सी पाति, रहि गईं इकटक ठाढ़ी॥
दुख सों दबि छबि-सीव, ग्रीव लै चली नाल सी।
अलक-अलिन के भार नमित जनु कमल माल सी॥
हिय भरि विरह हुतास, उसासन संग आवत भर।
चले कछुक मुरझाइ, मधुर भरे अधर बिंब वर॥

इसके पश्चात गोपियाँ श्रीकृष्ण से तर्क पूर्ण अनुनय विनय करती हैं और अन्त में यमुना-तट पर रास क्रीडा आरम्भ होती है—

उज्जल मृदु वालुका पुलिन अति सरस सुहाई।
जमुना जू निज कर तरंग करि आपु बनाई॥
बैठे तहँ सुन्दर सुजान, सब सुख निधान हरि।
बिलसत विविध विलास हास-रस हिय-हुलास भरि॥

साधारण लौकिक दृष्टि से गोपियों का इस प्रकार का आचरण नितान्त गर्हित प्रतीत होता है। वे कुल वधुएँ हैं। अतएव रात भर कृष्ण के साथ उनका विहार करना उन्हें अश्लीलता तथा निर्लज्जता की चरम सीमा तक पहुँचा देता है।

पंचाध्यायी में पारलौकिक पक्ष

किन्तु इसका एक पारलौकिक पक्ष भी है। सच तो यह है कि समस्त वैष्णव कवियों ने कृष्ण को 'परब्रह्म' परमात्मा के रूप में ही अंकित किया है। नन्ददास ने भी पंचाध्यायी में भगवान् के इसी रूप को ग्रहण किया है—

परमातम परब्रह्म, सबन के अन्तरजामी।
नारायन-भगवान धरम करि सब के स्वामी॥

(इस प्रकार कृष्ण को परमात्मा तथा गोपियों को अनेक आत्माएँ मान लेने से नन्ददास की कविता का पारलौकिक पक्ष दृष्टि के सम्मुख आ जाता है। सूक्ष्म दृष्टि से गोपियों का विरह लौकिक विरह नहीं है, किन्तु यह परमात्मा से आत्मा का वियोग है और कृष्ण से उनका मिलन आत्मा परमात्मा का सम्मिलन है। जिस प्रकार नदी समुद्र से मिलकर अपना अस्तित्व खो देती है, उसी प्रकार गोपियाँ भी कृष्ण से मिलकर अपनी स्वतंत्र सत्ता नहीं रखतीं)—

आइ उमँग सों मिलीं रँगीली गोपवधू यों।
रूप भुवन नागर सागर सों प्रेम नदी ज्यों॥

आत्मा परमात्मा के चिरन्तन विरह का चित्र कवीन्द्र रवीन्द्र ने भी एक स्थान पर खींचा है। वे कहते हैं—

"हरि अहरह तोमार विरह"

राधा के कृष्णरूप में परिणत हो जाने की चर्चा मैथिल कोकिल विद्यापति ने भी की है—

'अनुखन माधव माधव सुमिरत राधा भेलि मधाई'।

ब्रह्मपुराण में लिखा है कि सृष्टि की इच्छा से उस (परमात्मा) ने अपने को दो भागों में विभक्त किया। उसका एक भाग पुरुष और दूसरा स्त्रीरूप में आविर्भूत हुआ—

द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत्।
अर्द्धेन नारी तस्यान्तु सोऽसृजत् विविधा प्रजा॥

—ब्रह्म० १-४७

इस प्रकार पुरुषरूप में परमात्मा तथा स्त्रीरूप में आत्मा की कल्पना भारतीय दार्शनिकों के दीर्घकाल के चिन्तन का फल है। किन्तु

एक सौन्दर्यमय बालरूप में परमात्मा की प्रतिष्ठा आचार्य वल्लभ ने ही की। कृष्ण के इसी रूप को लेकर सूरदास, नन्ददास तथा अष्टछाप के अन्य कवियों ने अपने अमर काव्य की रचना की। यद्यपि कृष्ण की बाल, पौगण्ड तथा किशोर-लीला के वर्णन में इन कवियों ने शृंगार रस की ही प्रधानता रखी, किन्तु भक्ति से ओतप्रोत होने के कारण सर्वत्र इनकी कविता में दिव्य शृंगार की झांकी है। आगे के कवियों की कविता में दिव्य शृंगार का यह स्रोत प्रायः सूख सा गया। इसका एक मुख्य कारण था भक्ति का अभाव। कृष्ण के रास विलास को साधारण शृङ्गारिकता की कोटि में रखकर लोग उसके आध्यात्मिक रहस्य को भूल न जायं, इसके लिए ये कविगण बीच बीच में उनके अलौकिक 'स्वरूप' की ओर भी इङ्गित करते रहते हैं। कविवर नन्ददास जी तो इस पर विशेष ध्यान रखते हैं। 'किशोर कृष्ण' को गोपियों के साथ रास में मग्न देखकर ब्रह्मा आदि देवताओं को पराजित करनेवाला कामदेव आता है किन्तु कृष्ण उलटे उसी के मन का मथन करके उसका पराभव करते हैं —

तब आयौ वह "काम" पंचशर कर है जाकें।
ब्रह्मादिक कों जीति, बढ़ि रह्यौ अति मद ताकें॥
निरखि ब्रज-बधू संग, रंग भींने किसोर तन।
हरि मनमथ कर मथ्यौ, उलटि वा मनमथ कौ मन॥
सुरभि परयौ तहँ मैन, कहूँ धनु कहूँ बिसिख बर।
रति देखति पति दसा भीति ह्वै मारति उर-कर॥
पुनि-पुनि पिय अवलोकति, रोवति, अति अनुरागी।
मदन-बदन अमृत चुवाइ, भुज भरि लै भागी॥

(रास-पंचाध्यायी)

यहाँ तक नन्ददास जी की रास-पञ्चाध्यायी पर कुछ विचार प्रकट किये गये, अब उनके "भँवरगीत" के विषय में कुछ विवेचन किया

जायगा। वास्तव में भ्रमरगीत में कवि ने गोपियों के विरह का बहुत ही करुणापूर्ण वर्णन किया है। कथा इस प्रकार है —

[कृष्ण गोपियों को छोड़कर मथुरा चले जाते हैं। इधर उनके वियोग में गोपियों की बड़ी दयनीय दशा हो जाती है। उन्हें सान्त्वना देने के लिए कृष्ण अपने अनन्य मित्र उद्धव को भेजते हैं। उद्धव अद्वैतवादी हैं। अतएव वे तर्क द्वारा गोपियों के सम्मुख निर्गुण ब्रह्म की स्थापना करते हैं। परन्तु कृष्ण के विरहानल से सन्तप्त गोपियों को उद्धव के उस शुष्क ब्रह्मवाद में शांति कैसे हो? बस, निर्गुणवाद और सगुणवाद में 'शास्त्रार्थ' प्रारम्भ हो जाता है। इस नोक झोंक के समय वहाँ में एक भ्रमर उड़ता हुआ आ पहुँचता है। गोपियों को मिस पर एक अच्छा अवसर मिल जाता है। वे निर्गुणवाद के सम्बन्ध में जितनी जली कटी बातें कह सकती हैं, उस भ्रमर को लक्ष्य करके कहती हैं। संक्षेप में भ्रमरगीत की यही कथा है। इसका मुख्य उद्देश्य निर्गुणवाद का खण्डन और सगुणवाद का प्रतिपादन है।]

भ्रमरगीत की कथा

भ्रमरगीत की चर्चा सर्वप्रथम श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध (पूर्वार्द्ध अध्याय ४६-४७) में आती है। इसी कथा के आधार पर भक्त प्रवर सूरदास जी ने हिन्दी में सब से पहले भ्रमरगीत की रचना की थी। सूरदास के पश्चात् तो हिन्दी में भ्रमरगीत लिखने की परिपाटी सी चल पड़ी और नन्ददास, हितवृन्दावन दास, ग्वाल कवि, महाराज रघुराजसिंह, कविरत्न सत्यनारायण आदि अनेक कवियों ने भ्रमरगीतों की रचना की। इस विषय की सब से अन्तिम रचना स्वर्गीय जगन्नाथदास 'रत्नाकर' लिखित 'उद्धवशतक' है। यद्यपि रत्नाकर जी ने अपने इस काव्य ग्रन्थ का नाम भ्रमरगीत नहीं रक्खा, तथापि इस काव्य का विषय वही है। अतएव इसकी गणना भी भ्रमरगीत के अन्तर्गत की जा सकती है।

भ्रमरगीत की परम्परा

ऊपर लिखा जा चुका है कि 'भ्रमरगीत' का उद्गम स्थल श्रीमद्भागवत है। अब संक्षेप में इस बात पर विचार किया जाता है कि श्रीमद्भागवत के भ्रमरगीत और नन्ददास जी के भ्रमरगीत में क्या अन्तर है। श्रीमद्भागवत में यह कथा इस प्रकार है—कृष्ण जी के मित्र उद्धव एक दिन उनसे मिलते हैं। इधर उधर की बातचीत होने के बाद भगवान् कृष्ण उद्धव के द्वारा नन्द यशोदा तथा गोपियों के लिए सन्देश भेजते हैं। सुन्दर रथ पर आरूढ़ होकर उद्धव ब्रज में जाते हैं और वहां सर्वप्रथम नन्द से मिलते हैं। नन्द जी स्वागत के पश्चात् उनसे कृष्ण का कुशल-क्षेम पूछते हैं। कृष्ण के गुणों का स्मरण करके यशोदा एवं नन्द प्रेम विह्वल हो उठते हैं। फिर उद्धव का उपदेश प्रारम्भ होता है। वे नन्द यशोदा से कहते हैं कि कृष्ण के लिए कोई उत्तम, अधम अथवा सम विषम नहीं है। उनके न तो माता पिता हैं और न पुत्रादि। सत्, रज और तम गुणों में भी उनका कोई संबंध नहीं है। वे सम्पूर्ण भूतों में वर्तमान हैं। अतएव उनके लिए दुःख प्रकट करना ठीक नहीं —

श्रीमद्भागवत के भ्रमरगीत और नन्ददास के भ्रमरगीत की तुलना

मा खिद्यतं महाभागौ द्रक्ष्यथः कृष्णमन्तिके।
अन्तर्हृदि स भूतानामास्ते ज्योतिरिवैधसि ॥ ३६ ॥

न ह्यस्यास्ति प्रियः कश्चिन्नाप्रियो वास्त्यमानिनः।
नोत्तमो नाधमो नापि समानस्यासमोऽपि वा ॥ ३७ ॥

न माता न पिता तस्य न भार्या न सुतादयः।
नात्मीयो न परश्चापि न देहो जन्म एव च ॥ ३८ ॥

न चास्य कर्म वा लोके सदसन्मिश्रयोनिषु।
क्रीडार्थं सोऽपि साधूनां परित्राणाय कल्पते ॥ ३९ ॥

—श्री० भा० दश० स्क० पूर्वा० अ० ४६

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के छियालीसवें अध्याय में केवल नन्द तथा उद्धव में ही बातचीत होती है। इसके पश्चात् सैंतालीसवें अध्याय में गोपियों तथा उद्धव का संवाद प्रारम्भ होता है। कमल-नयन, प्रलम्बबाहु कृष्ण सखा उद्धव के पीताम्बर तथा कुण्डलादि को देखकर गोपियाँ उत्सुकता पूर्वक उनके निकट जाती हैं तथा कृष्ण के समाचार जानने की आतुरता प्रकट करती हैं —

तं वीक्ष्य कृष्णानुचरं व्रजस्त्रियः प्रलम्बबाहुं नवकञ्जलोचनम्।
पीताम्बरं पुष्करमालिनं लसन्मुखारविन्दं मणिमृष्टकुण्डलम्॥ १॥

शुचिस्मिताः कोऽयमपीच्यदर्शनः कुतश्च कस्याच्युतवेषभूषणः।
इति स्म सर्वाः परिवव्रुरुत्सुकास्तमुत्तमश्लोकपदाम्बुजाश्रयम्॥ २॥

तं प्रश्रयेणावनताः सुसत्कृतं सव्रीडहासेक्षणसूनृतादिभिः।
रहस्यपृच्छन्नुपविष्टमासने विज्ञाय सन्देशहरं रमापतेः॥ ३॥

—श्री० भा० दश० स्क० पूर्वा० अ० ४७

फिर गोपियाँ कृष्ण के गुणों का स्मरण कर करके विलाप करती हैं। इसी क्षण एक भ्रमर कहीं से उड़ता हुआ आ पहुँचता है। बस, उस भ्रमर में ही कृष्ण और सन्देशवाहक उद्धव के अभिन्न स्वरूप की कल्पना करके गोपियाँ प्रेमविह्वल हो उपरोक्त भाषण करने लगती हैं —

गायन्त्यः प्रियकर्माणि रुदन्त्यश्च गतह्रियः।
तस्य संस्मृत्य संस्मृत्य यानि कैशोरबाल्ययोः॥ १०॥

काचिन्मधुकरं दृष्ट्वा ध्यायन्ती कृष्णसङ्गमम्।
प्रियप्रस्थापितं दूतं कल्पयित्वेदमब्रवीत्॥ ११॥

—श्री० भा० दश० स्क० पूर्वा० अ० ४७

इसके पश्चात् उद्धव गोपियों में कृष्ण का सन्देश कह कर उन्हें शान्त करते हैं और अन्त में व्रजभूमि, नन्द तथा व्रजवधुओं की वन्दना करते हुए लौट जाते हैं —

वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः ।
यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ॥ ६३ ॥
—श्री० भा० दश० स्क० पू० अ० ४७

उपर्युक्त विवेचन से यह बात स्पष्ट रूप से पाठकों के ध्यान में आ जायगी कि भागवतकार ने गोपियों के साथ साथ नन्दयशोदा के कृष्णविरह को भी काफी महत्त्व दिया है। यही कारण है कि भागवत के एक सम्पूर्ण अध्याय में केवल नन्द यशोदा के विरह का ही चित्रण हुआ है। किन्तु नन्ददास के लिए नन्द यशोदा का विरह-वर्णन मानो अनावश्यक था, और इसी लिए उन्होंने केवल गोपियों के विरह-चित्रण तक ही अपने को सीमित रक्खा है।

एक बात और है। श्रीमद्भागवत में भ्रमर का प्रवेश सैंतालीसवें अध्याय में उस समय होता है जब गोपी उद्धव सम्वाद प्रारम्भ होता है। इसी प्रकार नन्ददास ने भी भ्रमर को ही आधार मानकर गोपी उद्धव संवाद प्रारम्भ कराया है। इससे ज्ञात होता है कि नन्ददास का भ्रमरगीत श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध (पूर्वार्ध) के केवल सैंतालीसवें अध्याय पर ही अवलम्बित है।

श्रीमद्भागवत के भ्रमरगीत तथा नन्ददास के भ्रमरगीत की तुलना करते हुए एक बात और भी मालूम होती है। वह यह कि भागवत में उद्धव के उपदेश से गोपियाँ एक प्रकार से सन्तुष्ट हो जाती हैं, किन्तु नन्ददास की गोपियाँ सन्तुष्ट नहीं होती हैं। वे तर्क करती हैं और अन्त में उद्धव को निरुत्तर करके यह पूर्णतया सिद्ध कर देती हैं कि ज्ञान मार्ग से भक्ति मार्ग ही श्रेष्ठ है। इसके अतिरिक्त भागवत में यह गीत उतने विस्तार से भी नहीं मिलता जितना नन्ददास की रचना में। उद्धव के मथुरा आने का प्रसंग श्रीमद्भागवत में बहुत ही संक्षिप्त रूप में, केवल एक ही छंद में, वर्णित है। परन्तु नन्ददास जी ने इसका बहुत ही विस्तृत वर्णन अत्यन्त सुन्दर रूप में किया है।

पहिली बात जो इस सम्बन्ध में ध्यान देने योग्य है यह है कि सूरदास ने श्रीमद्भागवत की कथा को अत्यन्त विस्तृत कर दिया है।

नन्ददास तथा सूरदास के भ्रमरगीतों की तुलना

सूरदास ने तीन भ्रमरगीत लिखे हैं जिनमें से पहले में कृष्ण के गोकुल से भेजे हुए सन्देश का, दूसरे में कृष्ण के सन्देश का तथा तीसरे में गोकुल पहुंचने पर उद्धव और गोपियों के संवाद का वर्णन है। किन्तु नन्ददास के भ्रमरगीत में केवल गोपी उद्धव के संवाद का वर्णन है। सूरदास ने गोपियों के मन की अवस्थाओं का बहुत ही सूक्ष्म विश्लेषण किया है। उसके विपरीत नन्ददास की रचना में ज्ञान तथा भक्ति का विवेचन मुख्य हो जाता है और मनोदशा का गौण।

नन्ददास के भ्रमरगीत में उद्धव स्वयं दार्शनिक सिद्धान्तों का उपदेश देते हैं, लेकिन सूरसागर के भ्रमरगीत में आप कृष्ण के सन्देशरूप में ही उन्हें प्रकट करते हैं। इसके अतिरिक्त सूरसागर में भ्रमर उद्धव के आगमन के पूर्व ही आ जाता है, किन्तु नन्ददास का भ्रमर श्रीमद्भागवत की भांति बाद में आता है। इसके अतिरिक्त सूरदास की गोपियां केवल हृदय के कोमल भावों का मधुर स्पर्श करके ही ज्ञान पर भक्ति की श्रेष्ठता प्रस्थापित करती हैं, किन्तु नन्ददास के भ्रमरगीत की गोपियां बोधवृत्ति को जाग्रत करके तर्क वितर्क भी करती हैं। उदाहरणार्थ, उद्धव जब यह कहते हैं कि कृष्ण निर्गुण तथा निर्विकार हैं, वे हाथ, पैर, मुख, चक्षु, नासिका, वाणी इत्यादि इन्द्रियों से रहित हैं, इस स्थूल जगत् तथा माया से अलग होकर केवल ज्ञान की सहायता से ही उनकी उपलब्धि हो सकती है तब नन्ददास की गोपियां अत्यन्त तर्क के साथ, अकाट्य युक्तियों द्वारा, उनका खण्डन करती हैं। वे कहती हैं —

> जो मुख नाहिन हतो कहो किन माखन खायो ?
> पायन बिन गोसङ्ग कहो बन-बन को धायो ?

विह्वल है धरनी परी ब्रजवनिता मुरझाय,
दै जल छींट प्रबोधहीं ऊधो बैन सुनाय।
सुनो ब्रजनागरी।

इसके पश्चात् उद्धव की ज्ञान गाथा प्रारम्भ होती है। आप गोपियों से कहते हैं—ब्रह्म की सत्ता तो जल, स्थल, आकाश आदि में सर्वत्र समान रूप से व्याप्त है। जिन्हें तुम 'कान्ह' (कृष्ण) कहती हो वे तो निर्विकार तथा निर्लिप्त हैं। उनके माता पिता भी नहीं हैं। यह समस्त ब्रह्माण्ड एक दिन उन्हीं में विलीन हो जायगा। वे तो केवल लीला रूप में ही अवतीर्ण हुए हैं और केवल योग से ही प्राप्त किये जा सकते हैं। गोपियां इसका उत्तर कितने स्वाभाविक ढंग से देती हैं। देखिये :—

ताहि बतावहु जोग जोग ऊधो जेहि भावै,
प्रेम सहित हम पास नन्द नन्दन गुन गावै।
नैन बैन मन प्रान में मोहन गुन भरपूरि,
प्रेम-पियूषै छाँडि कै कौन समेटै धूरि।
सखा सुन स्याम के।

प्रमाण युक्तियों तथा प्रत्यक्ष प्रमाणों के रहते हुए भी जब प्रतिपक्षी वितण्डावाद करता ही जाता है तो उस पर क्रोध आ जाता है। इसका प्रत्यक्ष परिणाम यह होता है कि विवाद करने वाले की ओर से स्वाभाविक उपेक्षा हो जाती है और चित्त वृत्ति दूसरी ओर सञ्चरण करने लगती है। गोपियों की भी ठीक यही दशा होती है। जब अनेक प्रमाणों के रहते हुए भी उद्धव अपने अद्वैत ज्ञान-कथन से तनिक भी विचलित नहीं होते तब अन्त में गोपियाँ क्रोधवश उन्हें नास्तिक कहकर सम्बोधित करती हैं। इस प्रकार उद्धव की ओर उपेक्षावृत्ति धारण करते ही गोपियों का ध्यान स्वाभाविक रीति से कृष्ण की ओर आकर्षित हो जाता है। उनके नेत्रों के सामने कृष्ण का मनमोहक

रूप उपस्थित हो जाता है और वे उसके दर्शन में तन्मय हो जाती हैं। नन्ददास ने इस मनोवैज्ञानिक स्थल को ढूंढ निकालने में एक जन्म जात कवि एवं कुशल कलाकार का परिचय दिया है। अन्य भ्रमर गीतकार इस मार्मिक स्थल तक न पहुँच सके। देखिए किस प्रकार गोपियाँ कृष्ण का प्रत्यक्ष दर्शन कर रही हैं —

ऐसे में नँदलाल रूप नैनन के आगे,
आय गये छवि छाय बने पियरे उर बागे।

कृष्ण के सम्मुख आते ही अत्यंत आर्त भाव से गोपियाँ उनसे याचना प्रारंभ कर देती हैं —

अहो नाथ रमानाथ और जदुनाथ गोसाईं,
नंद नँदन बिडराति फिरति तुम बिन सब गाईं।
काह न फेरि कृपाल ह्वै गो-ग्वालन सुख देहु,
दुख-निधि जल इस बूड़हीं कर अवलंबन देहु।
निठुर ह्वै कहँ रहे।

इस प्रार्थना के पश्चात् गोपियों का उपालंभ आरम्भ होता है। वे आपस में कहती हैं कि दूसरों को दुःख देना कृष्ण के लिये कोई नई बात नहीं है। ये तो कई जन्म के निर्दयी हैं —

इनके निर्दय रूप में नाहिन कछू बिचित्र,
पय पीवत ही पूतना मारी बाल-चरित्र।
मित्र ये कौन के।
जग्य करावन जात हे बिस्वामित्र समीप,
मग में मारी ताड़का रघुबंसी कुलदीप।
बाल ही रीति यह।
सीता जू के कहे तें सूपनखा पै कोपि।
छेदि अंग बिरूप के लोगन लज्जा लोपि।
कहा ताकी कथा।

इस प्रकार कृष्ण की निष्ठुरता का वर्णन करती हुई गोपियाँ उनके प्रेम में मग्न हो जाती हैं :—

यहि विधि होइ आवेस परम प्रेमहिं अनुरागी।
और रूप पिय चरित तहाँ ते देखन लागी।
रँगीली प्रेम की।

गोपियों के इस विशुद्ध प्रेम का प्रभाव उद्धव पर भी पड़ता है :—

देखत इनको प्रेम नेम ऊधव को भाग्यौ,
तिमिर भाव आवेस बहुत अपने मन लाग्यौ।
मन में कह रज पाय कै लै माथे निज धारि,
हौं तो कृतकृत ह्वै रह्यौं त्रिभुवन आनँद वारि।
बंदना जोग ये।

जिस समय ये बातें हो रही थीं, उसी समय कहीं से उड़ता हुआ एक भ्रमर आ पहुँचा। बस, गोपियों को उद्धव को फटकारने के लिए एक अच्छा मौका मिल गया। वे भ्रमर को ही सम्बोधित करके उद्धव को जली-कटी सुनाने लगीं :—

जिनि परसो मम पाँवरे, तुम मानत हम चोर,
तुमहीं सो कपटी हुते मोहन नंदकिसोर।
आपन सम हमको कियो चाहत है मतिमंद,
कपट के छंद सों।

कोउ कहै अहो मधुप स्याम जाको तुम चेला,
कुबजा तीरथ जाय कियो इंद्रिन को मेला।
मधुबन सुधि बिसराय कै आये गोकुल माँहि,
इहाँ सबै प्रेमी बसैं तुमरो गाहक नाँहि।
पधारो रावरे।

इस प्रकार कृष्ण के गुणों का स्मरण करती हुई गोपियाँ एक बार करुणार्द्र हो उठीं :—

ता पाछे इकबार ही रोईं सकल ब्रजनारि,
हा करुनामय नाथ हो केसव कृष्ण मुरारि।
फाटि हियरो चल्यौ।

गोपियों के प्रेम प्रवाह में उद्धव की ज्ञान गरिमा बह चली। उन्हें अपना अज्ञान सूझने लगा तथा हृदय में भक्ति का स्रोत उमड़ पड़ा—

धन्य धन्य ये लोग भजत हरि कौं जो ऐसें,
और कु पारस प्रेम बिना पावत कोउ कैसे।
मेरे या लघु ज्ञान कौ उर मद रह्यो उपाधि,
अब जान्यो ब्रज-प्रेम कौ लहत न आधौ आधि।
वृथा स्रम करि थके।

* * *

अब रहि हौं ब्रजभूमि की ह्वै पग मारग धूरि,
विचरत पद मो पै परैं सब सुख जीवन-मूरि।
मुनिन हू दुर्लभै।

गोपियों के प्रेम का उद्धव पर इतना प्रभाव पड़ा कि मथुरा पहुँचते ही उन्होंने भावावेश में कृष्ण से कहा—

करुनामयी रसिकता है तुम्हरी सब झूठी,
जबही लौं नहिं लखौ तबहि लौं बाँधी मूँठी।
मैं जान्यौ ब्रज जाय के तुम्हरो निर्दय रूप,
जो तुमरे अवलम्ब ही ताको मेलौ कूप।
कौन यह धर्म है।

पुनि पुनि कहैं अहो चलौ जाय वृन्दावन रहिये,
प्रेम पुंज कौ प्रेम जाय गोपिन सँग लहिये।
और काम सब छाँडि कै उन लोगन सुख देहु,
नातरु टूट्यो जात है अबही नेह सनेहु।
करोगे तौ कहा।

—उद्धव की बात सुनकर कृष्ण ने उनका संशय निवारण किया तथा अन्त में उन्हें अपना वास्तविक रूप दिखलाया —

मो में उनमें अन्तरो एकौ छिन भरि नाहि,
ज्यों देखौ मो माहि वै त्यौं मैं उनहीं माहि।
तरङ्गनि वारि ज्यौं।

गोपी रूप दिखाय तबै मोहन बनवारी,
ऊधव भ्रमहिं निवारि डारि मुख मोह की जारी।
अपनो रूप दिखाय कै लीन्हौ बहुरि दुराय।

* * *

इन पंक्तियों के साथ नन्ददास अपना गीत भी समाप्त कर देते हैं। उन्होंने अपने भ्रमरगीत में व्यर्थ विस्तार करके प्रबन्ध को बढ़ाने की कोशिश नहीं की है। जितना कुछ लिखा है, बहुत ही सरस, सरल और साभिप्राय है। भागवत के आधार पर लिखा हुआ उनका यह खण्डकाव्य वास्तव में बहुत ही मधुर है।

नन्ददास के दार्शनिक विचार

नन्ददास आचार्य वल्लभ के पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के शिष्य थे, अतएव उनके दार्शनिक विचारों को समझने के लिए वल्लभाचार्य के सिद्धान्तों को जान लेना परमावश्यक है। श्रुतियों की प्रामाणिकता पर आचार्य शंकर ने जिस अद्वैतवाद को प्रस्थापित किया उसकी सत्यता की अनुभूति—वैयक्तिक साधना पर ही अवलंबित होने के कारण—वह केवल ज्ञानियों की वस्तु रह गई। इसके फलस्वरूप शंकर का ब्रह्म आत्मनिष्ठ ज्ञानियों के ही चिन्तन तथा मनन का विषय रहा। जनसाधारण को तो ऐसे लोकरंजक तथा लोकपालक सगुण ईश्वर की आवश्यकता थी जो उनके दुःखों को निवारण करता। इस अभाव की पूर्ति के लिए विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत तथा शुद्धाद्वैत जैसे वाद प्रचलित हुए। सिद्धान्त पक्ष में श्रीवल्लभाचार्य शुद्धाद्वैतवादी थे। आपने विष्णुस्वामी के सिद्धान्तों

को ही विभिन्न रूप में जनता के सम्मुख उपस्थित किया। आचार्य शंकर के अनुसार ब्रह्म से विभिन्न कोई सत्ता नहीं है, जीव भी ब्रह्म ही है और जगत् भी ब्रह्म ही है। श्रीवल्लभाचार्य जी का सिद्धान्त इससे किंचित भिन्न है। आप के अनुसार सत् चित् आनन्द स्वरूप ब्रह्म स्वेच्छानुसार अपने इन तीनों रूपों को कभी तो प्रकट करता है और कभी इनका तिरोभाव कर लेता है। चैतन्य जगत् इन्हीं तीनों के अंशतः आविर्भाव से सत्तात्मक होता है। ब्रह्म से आत्मा की उत्पत्ति उसी प्रकार हुई है जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि से चिनगारी की। माया भी ब्रह्म की इच्छानुगामिनी शक्ति है। जीव में जब उपर्युक्त तीनों रूपों का आविर्भाव रहता है और मायाकृत तिरोभाव दूर हो जाता है तब वह अपने शुद्ध ब्रह्म रूप में आ जाता है। यह ईश्वर के अनुग्रह से ही हो सकता है जिसको आचार्य ने 'पुष्टि' संज्ञा दी है। इसी कारण श्रीवल्लभाचार्य का मार्ग 'पुष्टि-मार्ग' के नाम से प्रख्यात है।

आचार्य वल्लभ के अनुसार ब्रह्म तथा जीव के निम्नलिखित प्रधान गुण हैं —

ब्रह्म	जीव
(१) ऐश्वर्य	दीनत्व
(२) वीर्य	सर्वदुःखसहन
(३) यशस्	सर्वहीनत्व
(४) श्री	जन्मादिसर्वापद्विषयत्व (जन्मादि समस्त आपत्तियों के विषय)
(५) ज्ञान	देहादिष्वहंबुद्धि (देहादि को ही अहम् अर्थात् मैं हूँ मानना)
(६) वैराग्य	विषयासक्ति

उपासना के क्षेत्र में श्रीवल्लभाचार्य ने श्रीकृष्ण को ही सर्वस्व माना। मोक्ष के दो उपायों—ज्ञान तथा भक्ति में से आपने भक्ति को ही श्रेष्ठ बतलाया। ज्ञान द्वारा मोक्ष में आत्मा अक्षर (ब्रह्म) में लीन हो जाती है किन्तु भक्ति द्वारा मोक्ष में वह कृष्ण में लीन रहती है।

शंकर तथा वल्लभ, दोनों के दार्शनिक तत्वों पर विचार करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि शंकराचार्य 'एकत्ववादी' तथा वल्लभाचार्य 'अनेकत्ववादी' हैं। आचार्य शंकर के अनुसार केवल ब्रह्म ही सत्य है और सब मिथ्या है किन्तु वल्लभाचार्य के अनुसार व्यक्तिगत आत्माओं की भी सत्ता है। आप के ब्रह्म तथा जीव में इतना ही अन्तर है कि ब्रह्म का अंश होते हुए भी जीव में 'आनन्द' गुण व्यक्त नहीं है।

वल्लभाचार्य्य संसार को मिथ्या नहीं मानते। आप के अनुसार *ईश्वर तथा जगत् दोनों सत्य हैं। जिस प्रकार कुम्भकार मिट्टी से घट* की सृष्टि करता है, उस प्रकार से ईश्वर जगत् की सृष्टि नहीं करता। कुम्भकार के उदाहरण में कुम्भकार तथा मिट्टी दो पृथक् वस्तुएं हैं, किन्तु जगत् की सृष्टि के संबंध में ईश्वर कारण तथा वस्तु दोनों है। वह अपने ही को जगत् रूप में परिवर्तित कर देता है। जिस प्रकार स्वर्ण तथा स्वर्ण के आभूषण में केवल रूप का भेद है, वस्तु का नहीं, उसी प्रकार ईश्वर तथा जगत् में भी केवल रूप का ही अन्तर है। संक्षेप में वल्लभाचार्य्य के दार्शनिक विचारों के संबंध में इतना जान लेना पर्याप्त होगा। कविवर नन्ददास वल्लभ सम्प्रदायी तथा 'अष्टछाप' के कवियों में प्रमुख थे। अतएव आप के भी दार्शनिक विचार वही थे जो आचार्य वल्लभ के। इस संबंध में एक बात और भी जान लेना परमावश्यक है। वास्तव में काव्यरचना के समय दार्शनिक तत्वों की विवेचना करना कवि का उद्देश्य नहीं रहता। वह तो अत्यन्त रमणीय शब्दों में अपने हृद्गत भावों की अभिव्यक्ति करता हुआ अग्रसर होता जाता है। किन्तु उसकी रचना में प्रसङ्गवश कतिपय ऐसे शब्द तथा विचार आ जाते हैं जिससे उसके दार्शनिक विचारों की भी अभिव्य

जना गो जानी है। 'रासपञ्चाध्यायी' तथा 'भ्रमरगीत' में भी ऐसा ही हुआ है।

नन्ददास जी ने भी अपने सम्प्रदायानुसार श्रीकृष्ण को ब्रह्म के ही रूप में प्रस्तुत किया है। रास-पंचाध्यायी में श्रीकृष्ण स्वरूप का वर्णन करते हुए आप लिखते हैं —

> मोहन अद्भुत रूप कहि न आवै छवि ताकी।
> अखिल अंड व्यापी जु ब्रह्म आभा कछु ताकी॥
> परमातम परब्रह्म सबन के अंतरजामी।
> नाराइन भगवान धरम करि सब के स्वामी॥
>
> —रा० पं० अ० १—४१ ४२

ऊपर यह लिखा जा चुका है कि आचार्य वल्लभ के अनुसार 'माया भी ब्रह्म की इच्छानुगामिनी शक्ति है'। रास-पंचाध्यायी में नन्ददास ने इस आशय का स्पष्ट रूप में अंकित किया है। गोपियों के उत्तर में भगवान् स्वयं कहते हैं—मेरी वशवर्तिनी माया समस्त संसार को अपने वश में किए हुए है किन्तु तुम लोगों की माया मेरे मन को भी मोहित कर लेती है :—

> सकल विश्व अपबस करि मो माया सोहति है।
> प्रेम मई तुम्हरी माया मो मन मोहति है॥
>
> —रा० पं० अ० ४ २६।

'अद्वैतवाद के अनुसार केवल ब्रह्म ही सत्य है, और सब माया है। ब्रह्म और माया के गुणों में भी अन्तर है। इसी बात को अद्वैतवादी उद्धव गोपियों से कहते हैं :—

> माया के गुन और और हरि के गुन जानो।
> उन गुन को इन माहि आनि काहे को सानो ?

जाके गुन औं रूप को जानि न पायौ भेद ।
ताते निर्गुन रूप को बदत उपनिषद वेद ॥
सुनौ ब्रजनागरी ।
—भँ० गी० २१

किन्तु वल्लभ सम्प्रदायानुयायी नन्ददास को 'अद्वैतवाद' का माया सम्बन्धी यह सिद्धान्त मान्य नहीं । अतएव उनकी गोपियां भी अत्यन्त स्वतन्त्र भाव से इसका खंडन करती हैं—

जो उनके गुन नाहिं और गुन भये कहाँ तें ?
बीज बिना तरु जमै मोहि तुम कहौ कहाँ तें ?
वा गुन की परछाँह री माया-दर्पन-बीच ।
गुन तें गुन न्यारे भये अमल बारि जल कीच ।
सखा सुनु स्याम के ।
—भँ० गी० १०

श्रीमद्भागवतकार ने गोपियों के नैसर्गिक प्रेम, कृष्ण की 'लीला', 'रास' तथा 'मुरली' का वर्णन किया है । सूरदास, नन्ददास तथा अष्ट छाप के अन्य वैष्णव कवियों ने भागवत से भी बढ़कर इनका वर्णन किया है । जिस प्रकार गोपी तथा कृष्ण साधारण सांसारिक पुरुष नहीं, किन्तु आत्मा तथा ब्रह्म स्वरूप हैं उसी प्रकार से कृष्ण की 'लीला' 'रास' तथा 'मुरली' भी साधारण वस्तुएँ नहीं, किन्तु इनमें भी विशेषता है । अब आगे इसी विषय पर कुछ विचार प्रकट किये जायेंगे ।

लीला शब्द का साधारण अर्थ क्रीडा, विहार अथवा कौतुक है, किन्तु वल्लभाचार्य ने एक विशिष्ट अर्थ में इसका प्रयोग किया है । आप 'अणु भाष्य' में लिखते हैं—न हि लीलायां किञ्चित्प्रयोजन-

लीला

मस्ति । लीलाया एव प्रयोजनत्वात् । ईश्वरत्वादेव न लीला पर्यनुयोक्तुं शक्या । सा लीला कैवल्य मोक्ष । सन्न लीलायामन्यस्य तत्सहिते मोक्ष इत्यर्थ । लीलया कालोऽस्त वा ।

के रस में मत्त रहने के कारण श्रीशुकदेव जी अबाध गति से सर्वत्र परिभ्रमण करते हैं तथा सर्व-सौन्दर्य-सम्पन्न श्रीवृन्दावन भी जड़ता धारण किए हुए है। सिंह तथा मृग आदि पशु एक दूसरे के विरुद्ध होने पर भी, भगवान् की लीला के प्रभाव में आकर काम, क्रोध, मद, लोभ से रहित होकर एक साथ सचरण करते हैं। भगवान् कृष्ण के वियोग में भी यही 'मन-हरन लीला' गोपियों को सच्चिदानन्दस्वरूप का अनुभव कराती है। वे इसमें तन्मय होकर संयोग-वियोग का अपना सब सुख-दुख भूल जाती हैं।

शास्त्रों में परब्रह्म परमात्मा का "रसो वै सः" करके निर्वचन किया गया है। हमारे भक्त कवियों ने भी श्रीकृष्ण को षोडशकलापूर्ण परब्रह्म माना है। इसलिए श्रीकृष्ण में भी सब रसों की अभिव्यक्ति करके उसको रासलीला—नृत्यसंगीत—इत्यादि के रूप में प्रकट किया है। श्रीधर स्वामी ने "रसाना समूहो रासः" कहकर उपर्युक्त भाव को ही दर्शाया है। भगवान् कृष्ण ब्रज-गोपिकाओं का मण्डल बाँधकर यमुना किनारे शरच्चन्द्रिका में संगीत-नृत्य करते थे। श्रीवल्लभाचार्य जी ने अपनी सुबोधिनी टीका में "बहु-नर्तकीयुक्तो नृत्यविशेषो रासः" कहकर यही अभिप्राय प्रकट किया है। सब गोपिकाएं रस के केन्द्रस्वरूप रसिकशिरोमणि के अन्तर से बरसने वाले प्रेमरस में मत्त होकर इसी "रास" के अपूर्व आनन्द का अनुभव करती हुई तल्लीन हो जाती थीं। वर्तमान समय में रासक्रीड़ा में लोग अश्लीलता का अनुभव करने लगे हैं। परन्तु इससे हम नहीं कह सकते कि सचमुच ही यह क्रीड़ा कामोत्तेजक या अश्लील है। वास्तव में श्लीलता और अश्लीलता का भाव अपने अपने मनोविकारों पर निर्भर है। यदि हम अपने मनोविकारों को शुद्ध करके श्रीकृष्ण को परब्रह्म-स्वरूप मानकर, राधा और गोपियों को उनकी अनन्य भक्त मानकर—रासक्रीड़ा को देखें और उसमें भक्ति का ही स्वरूप अवलोकन करके सात्विक रमण करें, तो यह असम्भव नहीं है। साहित्य के

रास

उद्‌भट आचार्य विश्वनाथ चक्रवर्ती रास की जो व्याख्या दे रहे हैं, उसको देख कर तो आजकल के श्लीलता के समर्थक और भी अधिक नाक-भौं सिकोड़ेंगे। वह व्याख्या इस प्रकार है:—

नृत्यगीतचुम्बनालिङ्गनादीनां रसानां समूहो रासस्तन्मयी या क्रीड़ा ताम् अनुमतेस्तदानीं परस्परैकमत्येन स्वानुकूलेः। अन्योऽन्यमाबद्धाः संग्रथिता बाहवो यैस्तेस्सह रास॰॥

अर्थात् आचार्य विश्वनाथ चक्रवर्ती के मत से केवल बहुत सी नर्तकियों के साथ नृत्य विशेष को ही रास नहीं कहना चाहिए; बल्कि इस रास मे नृत्यगीत और आलिंगन-चुम्बन तक का समावेश किया गया है। इसमें नर्तक और नर्तकिया दोनों एक दूसरे से अनुमत, एकमत और परस्पर अनुकूल होकर और एक दूसरे से बाहुगुम्फित हो परस्पर आबद्ध होते हैं। इतना होने पर भी उस रास में उनको अश्लीलता दिखाई नहीं देती। फिर इस रासमडल में केवल एक मात्र नटनागर श्रीकृष्ण का ही अन्तर्भाव नहीं है; किन्तु श्रीकृष्ण के अतिरिक्त उनके अन्य सखा भी सम्मिलित रहते हैं। रास का सामूहिक आनन्द अनेक पुरुष नट और अनेक स्त्री नर्तकिया मिलकर प्राप्त करती हैं। जीव गोस्वामी के मत से एकाधिक पुरुषों का रास में सम्मिलित रहना सिद्ध है। आप कहते हैं:—

नटैगृंहीत कण्ठीनामन्योन्यात्तकरश्रियाम्।
नर्तकीनां भवेद्रासो मण्डलीभूय नर्तनम्॥

इस प्रकार के रास मे अनेक नट और अनेक नर्तकिया परस्पर एक दूसरे के गले म हाथ डालकर और हाथो में हाथ डालकर मण्डलाकार नृत्य करती हैं। इस रासक्रीड़ा को यदि पश्चिमी ढग के डास Dance की उपमा दी जाय, तो इसमें अश्लीलता का आरोप किया जा सकता है, परन्तु कृष्णभगवान्, जिनको कि भागवतधर्म मे षोडशकलापूर्ण साक्षात् परब्रह्म माना गया है, उनकी उपस्थिति में तो इसको भक्तिरस

का एक सुन्दर और सात्विक दृश्य ही कहा जायगा। महाकवि नन्द-दास जी ने भी अपनी रास-पचाध्यायी में इसी रास का अद्भुत वर्णन किया है :—

> जो व्रजदेवी निरतनि मंडल रास महाछबि।
> सो रस कैसे बरनि सकै ऐसो है को कवि॥
> ग्रीव ग्रीव भुज मेलि केलि कमनीय बढ़ी अति।
> लटकि लटकि मुरि निरतति क्यों कहि आवति गति॥
> छबि सौं निरतनि लटकनि मटकनि मंडल डोलनि।
> कोटि अमृत सम मुसिकनि मंजुल ता-थेइ बोलनि॥
>
> रा० पं० अ० ५, २६-२८

रासलीला का प्रभाव वर्णन करते हुए नन्ददास जी कहते हैं :—

> अप-अपनी गति-भेद, सबै निरतनि लागीं जब।
> मोहे गँधरब नर किंनर, सुन्दरि गान कियौ तब॥
>
> रा० पं० अ० ५—३०

रास-लीला में गोपियों का गान सुन कर रागी गन्धर्वों के मोहित हो जाने में कोई आश्चर्य की बात नहीं, किन्तु यहाँ तो विरागी मुनि तक उसे सुन कर मोहित हो जाते हैं। इतना ही नहीं, जड़ 'शिला' तक उसे सुनकर 'सलिल' में और 'सलिल' 'शिला' में परिवर्तित हो जाता है। वायु, शशि, आकाश-स्थित समस्त नक्षत्र तथा सूर्य तक उसे सुनने के लिए विरम जाते हैं :—

> अद्भुत-रस रह्यौ रास, गीति धुनि सुनि मोहे मुनि।
> सिला सलिल ह्वै गईं, सलिल ह्वै गयौ सिला पुनि॥
> पवन थक्यौ, ससि थक्यौ, थक्यौ उडु-मंडल सगरौ।
> पाछैं रवि रथ थक्यौ, चल्यौ नहिं आगैं डगरौ॥
>
> रा० पं० अ० ५—४४, ४५।

इस रासलीला के अद्‌भुत रस का वर्णन कौन कर सकता है? अपने सहस्र मुखों से गाकर भी अब तक शेष पार न पा सके। अत्यन्त शान्त भाव से शंकर मन ही मन इसका ध्यान करते हैं तथा 'सनक' 'सनन्दन' 'नारद' एवं शारदा को भी यह लीला अच्छी लगती है। यद्यपि लक्ष्मी भगवान् के कमल चरणों की रात्रिदिन सेवा किया करती हैं, किन्तु उन्हें भी स्वप्न तक में इसका आनन्द नहीं मिला:—

यह अद्‌भुत रस रास कहत कछु कहि नहिं आवै।
सेस सहस मुख गावै, अजहूँ पार न पावै ॥ ६७ ॥
सिव मनहीं मन ध्यावैं, काहू नाहिं जनावैं।
सनक, सनन्दन, नारद, सारद अति मन भावैं ॥ ६८ ॥
यद्यपि हरि-पद-कमल, जु कमला सेवति निस-दिन।
तदपि यह रस सपने, कबहूँ नहिं पायौ तिन ॥ ६९ ॥

रा० पं० अ० ५

इससे पाठकों को मालूम हो जायगा कि नन्ददास जी की रासविषयक कल्पना कितनी व्यापक है। श्रीकृष्ण और गोपिकाओं का "रास-मंडल" उनके लिए केवल ब्रजमंडल की ही 'वस्तु' नहीं है; बल्कि "अखण्ड-मण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्"—उनका "रास" स्वयं सच्चिदानन्द का स्वरूप बनकर चराचर को रस आनन्द पहुँचाने के लिए उमड़ रहा है।

वेद, उपनिषद् और पुराणों तक में शब्दब्रह्म की महिमा का वर्णन किया गया है। पौर्वात्य दर्शन में शब्द को साक्षात् परब्रह्म ही माना गया है। हमारे यहां के साधारण गवैये भी "नादब्रह्म" की महिमा जानते हैं।

मुरली

आजकल पौर्वात्य दर्शनशास्त्र से पूर्णतया अनभिज्ञ और पश्चिमी विचारों का अन्ध अनुकरण करने वाले हिन्दी लेखक 'शब्द' की अपेक्षा 'अर्थ' को अधिक महत्व देने जा रहे हैं; परन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से देखा जाय, तो 'शब्द' के बिना 'अर्थ' का बोध ही नहीं हो सकता—'अर्थ' तो शब्द के पीछे पीछे

दौड़ने वाली वस्तु है। नन्ददास जी ने इस तत्व को भली भांति समझ लिया था; और इसीलिए उन्होंने 'मुरली' को "नादब्रह्म की जननि" कहकर वर्णन किया है:—

सव लीनी कर-कमल जोग-माया सी मुरली।
अघटित घटना चतुर, बहुरि अधरन रस जुरली॥
जाकी धुनि तैं अगम, निगम, प्रगटे बड़ नागर।
नाद ब्रह्म की जननि मोहनी सब-सुख-सागर॥
रा० पं० प्र० १—२२, २६।

परब्रह्म रूप भगवान् कृष्ण 'स्वर' की मोहिनी माया से ही सम्पूर्ण चराचर विश्व को विमोहित कर रहे हैं। मुरली का स्वर श्रीकृष्ण के अधरों का रसपान कर के विश्व में और भी अधिक उन्मत्तता उत्पन्न कर रहा है। विश्व का सारा ज्ञान, आगम, निगम, सब उसी स्वर से उत्पन्न होकर चराचर को संचालित कर रहा है।

प्रज्ञा-चक्षु सूर ने तो मुरली का और भी रमणीय चित्र खींचा है—

सुनहु हरि मुरली मधुर बजाई।
मोहे सुर नर नाग निरंतर ब्रज बनिता सब धाईं॥
जमुना तीर प्रवाह थकित भयो पवन रह्यो उरझाई।
खग मृग मीन अधीन भये सब अपनी गति बिसराई॥
द्रुम बल्ली अनुराग पुलक तनु, ससि रह्यो निमि न घटाई।
सूर स्याम बृन्दावन विहरत चलहु चलहु सुधि पाई॥

श्रीकृष्ण की वंशी बज उठी। उसकी सुन्दर स्वरलहरियां उठ उठ कर दसों दिशाओं में फैलनी लगीं। नादब्रह्म के आनन्द में निमग्न होकर सारी सृष्टि डोलने लगी। सुर नर नाग सब मोहित हुए। ग्वाल बाल और गौवें जंगल में जहां जहां जिस दशा में थीं, वैसी ही चल पड़ीं। गोपिया भी घरों में अपना कामकाज जैसा का तैसा छोड़कर उठ दौड़ीं। वायु जो सुगंध और शीतलता के भार से धीरे धीरे चल

रहा था, उस मधुर मनोहर स्वर को सुन कर अटक रहा। वृक्ष और लताए अनुराग से पुलकित हो उठीं। यमुना तीर का प्रवाह थकित सा हो रहा। खग मृग मीन इत्यादि सब अपनी सुधबुध भूल कर मोहित हो गये। आकाश मे चन्द्रमा भी नादमुग्ध होकर ठहर गया। वह भी वशी की तान में उलझ रहा। सब जीवसृष्टि और जडसृष्टि नादब्रह्म के आनन्द में निमग्न होकर उसी में बिलकुल तल्लीन सी हो गई। मुरली की माया ऐसी ही है। श्रीकृष्ण की मुरली इस प्रकार जब सारी सृष्टि को विमोहित कर रही है, तब ब्रज की गोपियो का चित्त यदि वह इस तरह हरण कर लेवे कि वे उद्धव के बहुत ज्ञानध्यान बतलाने पर भी कृष्ण के प्रेम में ठगी सी बनी रहे, तो इसमें क्या आश्चर्य—

> कौन ब्रह्म की जाति ज्ञान कासौं कहौ ऊधो ?
> हमरे सुन्दर स्याम प्रेम को मारग सूधो॥
> नैन बैन स्रुति नासिका मोहन-रूप लखाय।
> सुधिबुधि सब मुरली हरी प्रेम-ठगौरी लाय॥
> सखा सुनु स्याम के।
>
> —भँ० गी० ८

मुरली स्वर मे गोपिकाओं को श्रीकृष्ण के अधरामृत का प्रेमरस पान करने को भी मिलता है। श्रीकृष्ण के जूठे अधरामृत में वे अपने को लीन करती हैं—वे एक रूप हो जाती हैं। भक्ति की यह पराकाष्ठा है! इसी में पागल होकर कृष्णवियोग में गोपिकाए अचानक कह उठती हैं.—

> अजहूँ नाहिन कछु बिगर्यौ रंचक पिय आवौ।
> मुरली को जूठो अधरामृत थाइ पियावौ॥
>
> रा० पं० अ० ३—१६

सारांश यह है कि नन्ददास जी ने मुरली के वर्णन में परब्रह्म का स्वरूप दिखलाकर निर्गुणभक्ति की ओर इशारा मात्र किया है। वास्तव में तो सगुण भक्ति की मूर्तिमान प्रतिमा गोपिकाओं के आधार से उन्होंने

मुरली को माना है। कई भक्तों ने तो जिस प्रकार गोपिकाओं को कृष्ण का अधरामृत पान कराया है, उसी प्रकार मुरली के विषय में भी कहा है और इस तरह गोपिकाओं और मुरली में सौतिया डाह भी पैदा करा दिया है। मुरली की महिमा ही विचित्र है।

भाषा

नन्ददास जी ने अपनी रास पञ्चाध्यायी तथा भँवर गीत व्रजभाषा में लिखा है। यह शौरसेनी अपभ्रंश की उत्तराधिकारिणी है। मध्य काल में व्रजभाषा ही साहित्य की एक सामान्य भाषा थी, जिसका प्रयोग समस्त हिन्दी कवियों ने किया है। राजपूताने में यह भाषा 'पिङ्गल' नाम से प्रख्यात थी। सोलहवीं शताब्दी के पूर्वाप्रान्त निवासी कवियों ने भी साहित्य में इसका प्रयोग किया है। नन्ददास भी सम्भवतः पूरब के रहने वाले थे, अतएव आप की व्रजभाषा में अवधी भोजपुरी इत्यादि प्रान्तीय भाषाओं के शब्द भी कहीं कहीं मिलते हैं।

जैसे 'है' की जगह अवधी का 'आहि' और 'होयगो' की जगह 'होइ' इत्यादि क्रियाओं का प्रयोग पाया जाता है। नन्ददास ने भोजपुरी के 'राउरे' सर्वनाम का भी प्रयोग भँवरगीत में किया है। खड़ी बोली के 'आप' की तरह भोजपुरी मध्यम पुरुष, एकवचन में आदर प्रदर्शन के लिए 'रउआ' अथवा 'रउएँ' का प्रयोग होता है। अवधी तथा व्रजभाषा में इस सर्वनाम का प्रयोग नहीं होता। सम्बन्धकारक में 'रउआ' का रूप 'राउर' हो जाता है और इसी से नन्ददास ने इस रूप को ग्रहण किया है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी कवितावली के 'रावरे दोष न पायन को' में इस शब्द का प्रयोग किया है।

नन्ददास की रचना में विदेशी शब्दों का प्राय अभाव है। पञ्चाध्यायी में आपने अरबी के 'लायक' तथा 'गार' शब्द के परिवर्तित रूप "लाइक" तथा 'गार' को ग्रहण किया है जो ध्वनि परिवर्तन के नियम के सर्वथा अनुकूल है।

संस्कृत की कोमलकान्त पदावली का जितना सुन्दर प्रयोग नन्ददास ने अपने काव्य में किया है उतना सम्भवतः अन्य किसी भाषा कवि ने नहीं किया है। रास-पंचाध्यायी की भाषा पर तो श्रीमद्भागवत की भाषा का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इसका एक मात्र कारण यही कहा जा सकता है कि आपको अपने गुरु से, तथा स्वतन्त्र रूप से, अनेक बार भागवत पुराण के अध्ययन करने का अवसर मिला था। अवश्य आप को उसके बहुत से श्लोक कण्ठाग्र होंगे। इसी कारण से तत्सम शब्दों का भी आपकी रचना में बाहुल्य है। उपर्युक्त शब्दों के अतिरिक्त आपने दो स्थानों पर 'नदति' तथा 'चुनति' क्रियाओं को भी तत्सम रूप में ही रख दिया है। इसी प्रकार के प्रयोगों से कुछ विद्वान् नन्ददासजी की कविता को जयदेव कवि के 'गीतगोविन्द' का अनुयायी तक मानने लगे हैं।

अस्तु। नन्ददासजी की प्रासादिक कविता का माधुर्य और रस इत्यादि को देखकर ही सर्वसाधारण में यह जनश्रुति प्रचलित हो गई है कि—

"और सब गढ़िया, नन्ददास जड़िया।"

अर्थात् अन्य कविता की रचना में जो सौष्ठव और स्वारस्य नहीं पाया जाता, वह नन्ददासजी की कविता में मिलता है। छन्द की गति को ठीक रखने के लिए आप के पूर्ववर्ती तथा परवर्ती कवियों ने शब्दों को खूब तोड़ा मरोड़ा है, जिसका एक परिणाम यह हुआ है कि भाषा में दुरूहता आ गई है। नन्ददास की भाषा में यह दोष नहीं है। आप के शब्दों के परिवर्तन ध्वनि-शास्त्र के नियमों के अनुकूल होने के कारण अत्यन्त स्वाभाविक बन पड़े हैं। जैसे—लछमी (लक्ष्मी), अपछरा (अप्सरा), गन्धरब (गन्धर्व), स्रम (श्रम), अन्तरजामी (अन्तर्यामी), धरम (धर्म), जोबन (यौवन), मारग (मार्ग) आदि।

भाषा को चलताऊ बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उत्तम प्रचलित शब्दों, मुहावरों और कहावतों का प्रयोग किया जाय। नन्ददास

जी ने भी 'रास-पंचाध्यायी' तथा 'भँवरगीत' में प्रचलित मुहावरों तथा लोकोक्तियों का प्रयोग किया है। पंचाध्यायी की अपेक्षा भँवरगीत में मुहावरों का अधिक प्रयोग हुआ है। इसका भी एक कारण है। भँवरगीत वास्तव में एक उपालम्भ-काव्य-ग्रन्थ है और जब पारस्परिक वार्तालाप में उपालम्भ अथवा व्यङ्गात्मक शैली का उपयोग किया जाता है तो मुहावरे स्वाभाविक ढंग से आ जाते हैं। नन्ददासजी ने जिन मुहावरों का उपयोग अपनी कविता में किया है उनमें से कुछ का प्रयोग प्रान्त-विशेष में ही होता है। जैसे 'मनमूसना' (मन चुराना) में पूर्वी अवधी तथा भोजपुरी की स्पष्ट छाप है। आप के शेष मुहावरों का प्रयोग प्रायः सर्वत्र होता है—जैसे धूल समेटना (खाक छानना), इन्द्रियों को मारना (इन्द्रियों को वश मे करना), लोभ की नाव होना (अत्यन्त लोभी होना), बेकारी काढना (व्यर्थ समय खोना), पी का पद पाना (मोक्ष पाना) इत्यादि। आपकी लोकोक्तियों का प्रयोग तो प्रायः सार्वदेशिक है। जैसे 'घर आयो नाग न पूजिये बाँबी पूजन जाहिं', 'जल बिन कहो कैसे जिये, गहिरे जल की मीन' इत्यादि।

भाषा को रसानुकूल बनाने के लिए कवि को तीन गुणों का ध्यान रखना पड़ता है। वे हैं माधुर्य, ओज और प्रसाद। जिस गुण से चित्त द्रवीभूत हो कर आह्लादित हो, उसे माधुर्य कहते हैं। यह गुण संयोग-शृङ्गार से करुण में, करुण मे वियोग-शृङ्गार में और वियोग-शृङ्गार में शांत रस में अधिकाधिक होता जाता है। जिस रचना में श्रुतिमधुर पद विशेष रूप से होते हैं, उसमें माधुर्यगुण विशेष माना जाता है। काव्य में विशेष कर टवर्ग श्रुति-कटु माना गया है। अतएव यह माधुर्यगुण का विघातक है। नीचे नन्ददास जी की कविता का माधुर्यगुण-युक्त एक उदाहरण दिया जाता है—

काव्यगुण

> नूपुर, कंकन, किंकिनि, करतल-मंजुल-मुरली।
> ताल, मृदंग, उपंग, चंग, एकहि सुर जुरली ॥ ३३ ॥

मृदुल मुरज टंकार, ताल झंकार मिली धुनि ।
मधुर जंत्र के तार भँवर गुंजार रली पुनि ॥ १२ ॥
रा० पं० अ० ४

जो गुण चित्त का उद्दीपन कर के उसको विशाल बनाता है, उसे ओज कहते हैं। वीर वीभत्स और रौद्र रस में क्रमशः इसकी अधिकाधिक स्थिति रहती है। द्वित्त्ववर्ण, संयुक्तवर्ण, अर्द्ध रकार, टवर्ग एवं लम्बे लम्बे समास युक्त पद, ओजगुण की व्यञ्जना करते हैं। शृङ्गार रस की प्रधानता होने के कारण नन्ददास की कविता में इस गुण का प्रायः अभाव है। फिर भी नीचे एक उदाहरण दिया जाता है —

पवन थक्यो, ससि थक्यो, थक्यो उडुमंडल सगरो।
पाछें रवि रथ थक्यो, चल्यो नहिं आगें डगरो ॥ ३५ ॥
रा० पं० अ० ४

प्रसादगुण की स्थिति सभी रसों और सारी रचनाओं में हो सकती है। वस्तुतः माधुर्य और ओजगुण का संबंध प्रायः शब्द के स्वरूप से होता है किन्तु प्रसाद का सम्बन्ध उसके अर्थ से है। अतएव शब्द की जिस भाषा में उसका अर्थ सहज हृदयङ्गम हो जाय, ऐसा सरल और सुबोध पद प्रसादगुण युक्त होता है। नन्ददास की रचना में यह गुण विशेष रूप में विद्यमान है। उदाहरणार्थ कुछ पद नीचे उद्धृत किये जाते हैं —

ह्वै गई बिरह बिकल तब पूँछति द्रुम बेली बन।
को जड़ को चैतन्य न जानत कछु बिरही जन ॥ ५ ॥
हे मालति ! हे जाति जूथिके ! सुनि हित दै चित।
मान हरन मन हरन लाल गिरधरन लखे इत ॥ ६ ॥
अहो असोक ! हरि सोक लोकमनि ! पियहि बतावहु।
अहो पनस ! सुभ सरस मरति तिय अमिय पियावहु ॥ १६ ॥
जमुना तट के बिटप पूँछि भईं निपट उदासी।
क्यों कहिहैं सखि ! महा कठिन तीरथ के बासी ॥ १७ ॥
रा० पं० अ० २

ऊपर के पद में रस के चारों अंग स्पष्ट परिलक्षित हैं। इसका स्थायीभाव रति है। कृष्ण तथा गोपिकायें आलम्बन विभाव, उज्वल यमुनातट उद्दीपन, परिरंभन, मुखचुम्बन आदि अनुभाव तथा सम्मिलन सुख से उत्पन्न हर्ष व्यभिचारी भाव है। यहाँ उपक्रम श्रीकृष्ण ने किया है अतः यह नायकारब्ध संयोग शृङ्गार हुआ।

विप्रलंभ शृङ्गार को आचार्यों ने अभिलाषा हेतुक, ईर्ष्या हेतुक, विरह हेतुक, प्रवास हेतुक तथा शाप हेतुक, इन पाँच भागों में विभक्त किया है। नीचे प्रवास हेतुक विप्रलंभ शृङ्गार का एक बहुत ही उत्तम उदाहरण दिया जाता है। इसमें कृष्ण के अन्तर्धान हो जाने पर गोपियों की प्रलाप-दशा की अत्यन्त सुन्दर अभिव्यञ्जना हुई है —

हे चन्दन ! दुख दन्दन ! सब की जरनि जुड़ावो।
नँद नंदन, जगवंदन, चंदन हमहिं बतावो ॥ १० ॥
पूछौरी ! इन लतन, फूलि रही फूलन जोई।
सुन्दर पिय के परसि बिना, अस फूल न होई ॥ ११ ॥
अहो पवन ! सुभ गमन सुगंध सँग थिर व्है रही चलि।
दुःख दवन, सुख भवन रवन कहुँ तें चितए वलि ॥ १२ ॥
अहो चंपक वर कुसुम ! तुमहिं छवि सब सों न्यारी।
नेकु बतावहु अहो ! जहाँ हरि कुंज विहारी ॥ १४ ॥
रा० पं० अ० ९

निम्नलिखित पदों में कवि ने करुणरस का अत्यन्त सजीव चित्र उपस्थित किया है —

प्रनत मनोरथ करन, चरन सरसीरुह पिय के।
का घटि जैहे नाथ ! हरत दुख हमरे जिय के ॥ ८ ॥
कहाँ हमारी प्रीति कहाँ पिय ! तुव निठुराई।
मनि पखान सों खचै, दई तें कछु न बसाई ॥ ९ ॥
जब तुम कानन जात सहस जुग सम बीतत छिनु।
दिन बीतत जिहि भाँति हमहिं जानत पिय तुम बिनु ॥ १० ॥

पुनि कानन त आवत सुन्दर आनन दख।
तहँ बिधना अति कूर करी पिय ! नैन निमेखे ॥ ११ ॥

रा० प० अ० ३

रास-पचाध्यायी को समाप्त करत समय नन्ददास ने शान्त रस का सुन्दर चित्र खाचा है —

स्रवन कीरतन ध्यान सार सुमिरन कौ है पुनि।
ग्यान सार हरि ध्यान सार स्रुति सार गुही गुनि ॥
अघ हरनी मन हरनी सुन्दर प्रम बितरनी।
"नददास के कठ बसा, नित मग्ल करनी ॥

'रासपचा याया म ना तो श्रीकृष्ण और गोपिकाओं क रास का ही प्रत्यक्ष रूप म वणन ह परन्तु नन्ददास ने रास श०द का व्युत्पत्ति पर ध्यान रखत हुए प्राय काव्य क सभी रसा का आविभाव भी ठौर ठौर पर दिखलाया है। हा 'भवरगीत म नददास न हास्य रस की भी चतुरता स चित्रित किया ह। प्राचीन काल म हा मरल न रा रमणी मूखतापूर्ण या हास्यरस का आलबन रही ह। उन म जाकर उद्धव नवयुवतियों को अद्वैतवाद का शिक्षा दना आरम्भ करत ह। उनका इस प्रकार का आचरण अवश्य ही गापियो की दृष्टि म मूखतापूर्ण है। अतएव गोपिया भी व्यङ्गगर्भित बाता स उन्ह खूब बनाती ह। काव्य म यत्र तत्र हास्यरस का पोषक भी मिलता गया ह। तीन उदाहरण स्वरूप नीचपर पर उध्दृत किए जाते हैं —

कोउ कहै अहो मधुप ! स्याम जाको तुम चला।
कबजा नाच्यो जाय कियो इन्द्रिन को मेला ॥
गुजन सुधि बिसराय क आय गोकुल माहि।
इ॰ सबै प्रेमा बस्य तुमरा गाहक नाहि ॥

पचारा रायरं ॥ ४७ ।

कोउ कह रे मधुप ! भाउ मधुबन क एप्य।
सार तहा क सिद्ध लोग ह ह या कम ?

अवगुन गुन गहि लेत ह गुन को डारत मेटि ।
मोहन निर्गुन को गहे तुम साधुन को मेंटि ।
गाठि को खोय के ॥ ४८ ॥

उपर्युक्त विवेचन म पाठको को मालूम हो जायगा कि कविवर नन्द दास की रचना कैसी सरस है और भिन्न भिन्न रसो का आविर्भाव आपने अपनी कविता म किस प्रकार किया है।

वस्तु वर्णन तथा काव्य के उत्कृष्टता प्रदर्शन म गुण और अलकार दोनो की आवश्यकता पड़ती है। रस तो, जैसा ऊपर कहा गया है, काव्य की आत्मा ही है। अब गुण और अलकार के अन्तर को भी स्पष्टरूप से जान लेना चाहिए।

अलकार

वास्तव में गुण रस के धर्म हैं, क्योकि व सदैव रस के साथ रहते हैं किन्तु अलकार रस का साथ छोड़कर नीरस काव्य में भी रहते हैं। इसके अतिरिक्त गुण सदैव रस का उपकार करते हैं, किन्तु अलकार रस के साथ रहकर कभी उपकारक होते हैं और कभी अपकारक।

अलकार के भी साधारणतया दो भेद हैं—शब्दालकार और अर्थालकार। नन्ददास की कविता म दोनो प्रकार के अलकार मिलते ह। शब्दालकार म अनुप्रास मुख्य है। नीचे रास-पचाध्यायी से अनुप्रास के उदाहरण दिए जाते हैं —

कृष्णरग रस ऐन नैन राजत रतनारे।
कृष्ण रसासव पान अलस कछु घूम घुँमारे ॥ २ ॥
स्रवन कृष्ण रस भरन गड-मडल भल दरसै।
प्रेमानंद मिलि तासु मन्द मुसिकन मधु बरसे ॥ ३ ॥
रा० प० अ० ।

इत महकति मालती चारु चपक चित चोरत।
उत घनसार तुसार मिली मदार झकोरत ॥ ११८ ॥

इत लवंग-नव-रंग एलची झेलि रही रस।
उत कुरबक, केवरौ, केतकी गंध-बंध-बस ॥ ११६ ॥

रा० प० अ० १

नैन बैन मन प्रान में मोहन गुन भरपूरि।
प्रेम पियूषे छाँडि के कौन समेटै धूरि॥

भँ० गी० १२

अर्थालंकार में नन्ददास जी ने उपमा, अनन्वय, रूपक तथा उत्प्रेक्षा का विशेष रूप से प्रयोग किया है। इनमें भी उत्प्रेक्षा का प्रयोग अत्यधिक परिमाण में हुआ है। अब इन अलंकारों के पारस्परिक सम्बन्ध को भी तनिक समझ लेना चाहिए। उपमालंकार में उपमेय और उपमान की समता करके उपमेय का उत्कर्ष बढ़ाया जाता है, रूपक में अभेद आरोप करके। अनन्वय में तो उपमेय को ही उपमानता प्राप्त हो जाती है; किन्तु उत्प्रेक्षा में उपमेय को उपमान से भिन्न जानते हुए भी बलपूर्वक प्रधानता के साथ उपमेय में उपमान की सम्भावना की जाती है। अब क्रमशः इन के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं :—

(१) उपमा—

सुघर साँवरे पिय सँग, निरतति यों ब्रज-बाला।
ज्यों घन-मंडल-मंजुल खेलति दामिनी-माला ॥ १४ ॥

रा० पं० अ० ५

(२) रूपक—

नव-मरकत-मनि स्याम, कनक-मनि-गन ब्रजबाला ॥ १० ॥

रा० प० अ० ५

(३) अनन्वय—

या बन की बर-बानक, या बनहीं बन आवै ॥ २६ ॥

रा० प० अ० १

(४) उत्प्रेक्षा—

गोरे तन की जोति छूटि छबि छाइ रही धर।
माना ठाढ़ी सुभग कुँवरि, कंचन अवनी पर॥ ४२॥
घन न निवुरि बीजुरी जनु मानिनि-तनु काछ।
किधौ चंद सों रूसि, चन्द्रिका रहि गई पाछ॥ ४३॥

रा० पं० अ० २

रास पंचाध्यायी की रचना नन्ददास जी ने रोला छन्द में की है। इस छन्द के प्रत्येक चरण में चौबीस मात्रायें होती हैं और यति ग्यारह और तेरह पर होती है। इस नियम के अनुसार छन्द पंचाध्यायी के कतिपय पदों में यतिभंग दोष आ जाता है किन्तु नन्ददास जी की समस्त कविता पढ़ने से शायद यह परिणाम भी निकाला जा सकता है कि आपने छन्दों के अन्तर्गत यति और मात्राओं इत्यादि की गणना की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है। जैसे कि प्रायः गायक लोग किसी भी प्रकार के छन्द को खींचतान कर अपने संगीत के ताल स्वर में बैठा लेते हैं वैसा ही नन्ददास जी के छन्दों में भी कई जगह पाया जाता है। अवश्य ही नन्ददास जी केशवदास की तरह छन्दशास्त्र और पिंगलशास्त्र के बहुत बड़े पंडित नहीं जान पड़ते, परन्तु उनकी रचना में छन्दों की गति, शब्दों के लालित्य और पदों की रचना में संगीत तो अवश्य पाया जाता है, और अष्टछाप में प्रायः सभी कवि संगीत के आचार्य माने जाते हैं। नन्ददास जी की समस्त रचना से भी उनकी संगीतप्रियता का पूर्ण परिचय मिलता है।

नन्ददास जी ने अपने भँवरगीत की रचना जिस ढंग के छन्द में की है, उससे उनकी संगीतपटुता का बहुत अच्छा प्रमाण मिलता है। भँवरगीत की रचना आप ने एक स्वतंत्र प्रकार के छन्द में की है। इसके प्रत्येक छन्द में प्रथम रोला के दो पद, फिर दोहे के दो पद और अंत में दस मात्राओं की एक टेक रखी गई है। रोले और दोहे की संयोजना में नन्ददास जी का संगीत-चातुर्य प्रकट होता है, क्योंकि

रोला और दोहा, दोनों छन्दों में चौबीस ही चौबीस मात्राएं होती हैं; और दोनों छन्दों की रचना यति के हिसाब से भी एक दूसरे से उलटी पड़ती है। इसलिए रोले की दो लाइनों के बाद ही दोहे की दो लाइनें रख देने से भँवरगीत का छन्द बहुत ही भावोत्पादक और संगीतमय बन गया है। इसके साथ ही दस मात्रावाली अन्तिम टेक के मिलने से गोपियों और उद्धव के उत्तरप्रत्युत्तर की तरंगावली में संगीत की एक अपूर्व हिलोर पैदा हो रही है।

"भँवरगीत" नाम से ही प्रकट होता है कि यह कविता "गीतिकाव्य" है, और नन्ददास जी ने इसको संगीत के ढंग पर ही छन्दों में बैठाया है। इसका सब से बड़ा प्रमाण भँवरगीत के प्रारम्भ की दो पंक्तियां हैं:—

ऊधौ को उपदेस सुनो ब्रजनागरी।
रूप सील लावन्य सबै गुन आगरी॥

भँवरगीत के प्रत्येक 'गीत' की प्रथम दो लाइनें रोला छन्द की हैं। फिर भी नन्ददास जी ने इस गीतिकाव्य की सर्वप्रथम दो लाइनें, चौबीस मात्राओं के रोला में न रखकर, उपर्युक्त प्रकार से, इक्कीस मात्राओं की ही क्यों रखीं? हमारे इस प्रश्न का उत्तर सम्पूर्ण पुस्तक की "सुनो ब्रजनागरी" इस टेक में मौजूद है। अर्थात् इस गीतिकाव्य के प्रारम्भ की दो लाइनें मानो सम्पूर्ण भँवरगीत के "अन्तरा" के रूप में रखी गई हैं। जैसे कोई भी पद गाते समय उसका अन्तरा बार बार गाया जाता है, वैसे ही भँवरगीत को भी कवि ने गाने की चीज बना दिया है। साराश यह है कि नन्ददास जी ने भँवरगीत की छन्दरचना में अत्यन्त कौशल से काम लिया है; और इससे इस काव्य का माधुर्य बहुत ही बढ़ गया है।

आदिकवि महर्षि वाल्मीकि ने अपने अमर काव्य में प्रकृति का अत्यन्त मनोरम चित्र उपस्थित किया है। कालिदास की उपमा श्रेष्ठ बतलाई गई है किन्तु उनका प्रकृति चित्रण भी कम सुन्दर नहीं। शकुन्तला में आश्रम का और कुमार सम्भव के प्रारम्भ में हिमालय का जैसा सुन्दर चित्र खींचा गया है, वैसा अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। हिन्दी के प्राचीन कवियों का ध्यान प्रकृति वर्णन की ओर बहुत कम रहा है। इसका कारण यह है कि हिन्दी कविता का प्रारम्भ उस समय हुआ जब हमारे देश में स्वाधीनता का स्वच्छ सा वायुमण्डल मौजूद नहीं था। कवि लोग विशेष कर राजाओं और बादशाहों के दरबार में आश्रित थे और उनको प्रकृति निरीक्षण के अवसर भी प्रायः कम ही मिलते थे। अधिकांश तो अपने आश्रयदाताओं तथा उनके दरबार के मनोरंजन अथवा कीर्ति वर्णन के लिए ही कवि लोग रचनाएं करते थे। ऐसी दशा में प्रकृति चित्रण की ओर उनका ध्यान न जाना एक स्वाभाविक बात है। फिर भी कई भक्त कवियों ने प्रकृतिवर्णन अच्छा किया है।

नन्ददास का प्रकृति चित्रण

नन्ददास जी की कविता में भी प्रकृति चित्रण दो रूपों में हुआ है—एक तो प्रकृति का शुद्ध चित्रण दूसरा उद्दीपन तथा अलंकार रूप में प्रकृति का वर्णन। शुद्ध प्रकृति चित्रण को ही हम वास्तविक प्रकृति वर्णन कह सकते हैं। इस प्रकार के प्रकृति वर्णन में 'बिम्ब' ग्रहण कराना ही कवि का मुख्य उद्देश्य होता है। बिम्ब ग्रहण से तात्पर्य यह है कि कवि जिस दृश्य का चित्रण करे उसकी सजीव प्रतिमा पाठकों के सम्मुख आ जानी चाहिए। कुछ स्थलों पर नन्ददास ने प्रकृति का चित्रण इसी रूप में किया है। उदाहरण रूप में कतिपय पद नीचे दिए जाते हैं —

तिहि सुर तरु मधि और एक अद्भुत छवि छाजै।
साखा दल फल फूलन हरि प्रतिबिम्ब बिराजै॥ ३४॥
ता ढिग कोमल कनक भूमि मनिमय मोहत मन।
लखियत सब प्रतिबिम्ब मनहुँ घर मैं दूजौ बन॥ ३५।

थलज जलज झलमलत, ललित बहु भँवर उड़ावे।
उड़ि उड़ि परत पराग, विमल छवि कहति न आवै ॥ ३६ ॥
जमुना जू अति प्रेम भरी तट बहति जु गहरी।
मनि मंडित महि माझि, दरि ला उपजति लहरी ॥ ३७ ॥

रा० पं० अ० १

बाह्य प्रकृति चित्रण सम्बन्धी काव्य के निम्नलिखित पद भी सुंदर हैं—

सुभ-सरिता के तीर धीर बलवीर गए तहँ।
कोमल मल समीर, छविन की महा भीर जहँ ॥ ११६ ॥
कुसुम धूरि धूधरी कुंज, छवि पुंजन छाई।
गुंजत मंजु मलिंद बेनु जनु बजति सुहाई ॥ ११७ ॥
इत महकति मालती, चारु चंपक चित चोरत।
उत घनसार तुसार मिली मन्दार झकोरत ॥ ११८ ॥
इत लवंग नव-रंग एलची मेलि रही रस।
उत करवक केवरो, केतकी गंध बंधरस ॥ ११९ ॥
इत तुलसी छवि हुलसी छाँड़ति परिमल पूर।
उत कमोद आमोद गोंद भरि भरि सुख लूटैं ॥ १२० ॥

रा० पं० अ० १

नन्ददास जी भक्तकाल में हुए अतएव उन्होंने तथा अलंकार रूप में आपने प्रकृति का जो चित्रण किया उसमें उतनी अस्वाभाविकता नहीं आने पाई जितनी बिहारी देव तथा रीतकाल के अन्य कवियों में आई। भगवान् कृष्ण के रास की इच्छा करते ही उद्दीपन रूप में जो चन्द्रोदय हुआ उसका मनोहर चित्र निम्नलिखित पदों में कवि ने खींचा है।

ताही छिन उडराज उदित, रस रास सहायक।
कुंकुम मंडित प्रिया बदन जनु नागर नायक ॥ २१ ॥
कोमल किरन अरुन नभ बन में व्यापि रही यों।
मनसिज खेल्यो फागु घुमरि घुरि रह्यो गुलाल ज्यों ॥ २२ ॥

फटिक छटा सी किरन कुंज रन्ध्रन ह्वै आई।
मानो वितन वितान सुदेस तनाव तनाई॥ २२॥

रा० प० अ० १

अब अलंकार रूप में भी प्रकृति वर्णन का एक उदाहरण नीचे उद्धृत किया जाता है —

मुख अरविंदन आगे जल अरविंद लगे जस।
भोर भऐं भवनन के दीपक मंद परत जस॥ २१॥

रा० प० अ० ८

नन्ददास जी की समस्त कविता देखने से ज्ञात पड़ता है कि हिन्दी के अन्य भक्त कवियों की भाँति नन्ददास जी ने भी अपने काव्य में प्रकृतिवर्णन को कोई खास विशेषता नहीं दी है। लेकिन वर्णन के प्रवाह में आपने प्रकृतिचित्रण का कोई अवसर भी हाथ से जाने नहीं दिया है।

भक्ति

कठोपनिषद् में कहा गया है कि जब मनुष्य के हृदय में रहने वाली सब कामनायें छूट जाती हैं, तब वह मुक्त हो जाता है। उस समय वह इसी संसार में रहते हुए ब्रह्मानन्द का उपभोग करता है।

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिता।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्मसमश्नुते॥

अब प्रश्न यह उठता है कि कामनाओं का बन्धन कैसे छूटे? इसके लिए भी दो उपाय बतलाये गए हैं—ज्ञान और भक्ति। पूर्ण ज्ञान प्राप्त होने से अविद्या तथा तज्जनित तृष्णादि का नाश हो जाता है। उग्र तपस्या के पश्चात् ज्ञान की प्राप्ति पर भगवान् बुद्ध ने निम्नलिखित उदान (उल्लास वाक्य) कहा था —

अनेक जाति संसारं सन्धाविस्सं अनिब्बिसं।
गहकारकं गवेसन्तो दुक्खा जाति पुनप्पुनं॥

गहकारक दिट्ठोसि, पुन गेह न काहसि ।
सब्बा ते फासुका भग्गा, गहकूटं विसंखित ॥
विसखार गत चित्त, तण्हान खय मज्झगा ।

धम्मपद ११-८

अर्थात् मै लगातार अनेक जन्मों तक (इस कायारूपी घर को बनाने वाले) गृहकार को ढूढता हुआ ससार मे दौड़ता रहा । फिर फिर पैदा होना दुखदायी है । लेकिन हे गृहकार ! अब तुझे मैंने देख लिया । अब तू फिर घर न बना सकेगा । तेरी सभी कड़ियाँ टूट गई । गृह कूट भी गिर पड़ा । चित्त सस्कार रहित हो गया । तृष्णा जाती रही ।

भगवान बुद्ध की तरह कठिन तपस्या करने वाला का सख्या इस ससार मे अत्यल्प है, अतएव सर्वसाधारण के लिए भक्तिमार्ग ही श्रेयस्कर बतलाया गया है । श्रीमद्भागवतकार के अनुसार सतयुग, त्रेता तथा द्वापर मे मोक्ष साधन के लिए ज्ञान तथा वैराग्य अपेक्षित हैं किन्तु कलियुग में तो केवल भक्ति द्वारा ही सायुज्य मुक्ति मिल सकती है —

सत्यादि त्रियुगे बोध वैराग्यौ मुक्तिसाधकौ ।
कलौ तु केवला भक्तिर्ब्रह्मसायुज्यकारिणी ॥ ४ ॥

श्री० भा० माहात्म्य अ० २

इस प्रकार श्रीमदभागवत में वासुदेव की भक्ति ही श्रेष्ठ मानी गई है । महर्षि गर्ग ने भी गालव को सम्बोधित करते हुए एक स्थान पर कहा है —

हे गालव ! परमात्मा स्वरूप कृष्ण ही अशरीरियों की निधि हैं । यह ब्रह्माण्ड उनका एक अश है । अपनी मान के लिए खिलवाड़ करने वाले बालक की भांति ईश्वर अपनी माया से सृष्टि का सघटन और विघटन किया करता है । यह माया वासुदेव की क्रीड़ा है । इसकी निवृत्ति कृष्ण के उपासनापुञ्ज से होता है ।

आचार्य वल्लभ तथा उनके अनुयायी सूरदास एवं नन्ददास ने भी, इस भागवत पथ का अनुसरण करते हुए, कृष्णभक्ति ही को श्रेष्ठ माना है। इनके मत में भगवान् कृष्ण का सगुण रूप भी ग्राह्य है। प्रज्ञा चक्षु सूरदास अपने भ्रमरगीत में कहते हैं —

कौन काज या निर्गुण सों चिरजीवहु कान्ह हमारे।

इसी तरह नन्ददास जी ने भी भक्ति-पक्ष पर विशेष ज़ोर दिया है। उद्धव जब निर्गुण ब्रह्म का निरूपण करके गोपियों को ज्ञान सिखाने लगे, तब गोपियाँ तर्क करती हैं -

जो उनके गुन नाहिं और गुन भये कहाँ ते ?
बीज बिना तरु जमे मोहि तुम कहो कहाँ ते ?
वा गुन की परछाँह री माया दर्पन-बीच।
गुन ते गुन न्यारे भये अमल वारि मिलि कीच।
सखा सुनु स्याम के ॥ २० ॥

भँ० गी०

आगे चलकर कृष्ण के गुणों का स्मरण करती हुई गोपिकाएँ एक भाव की अनन्य करुण स्वर में रो उठती हैं। उद्धव पर इसका बड़ा प्रभाव पड़ता है। उनकी ज्ञानगरिमा नष्ट हो जाती है और वे गोपियों के प्रेम प्रवाह में बहकर उनके भक्तिपक्ष के कायल हो जाते हैं —

प्रेम प्रसंसा करत सुद्ध जो भक्ति प्रकासी।
दुविधा ग्यान गिलानि मन्दता सिगरी नासी॥
कहत मोहि विस्मय भयो हरि के ये निज पात्र।
हौं तो कृतकृत ह्वै गयो इनके दरसन मात्र॥
मेटि मल ग्यान को॥

भँ० गी० ६२

गोपिकाओं की निष्काम भक्ति और अपने इष्टदेव के प्रति विशुद्ध प्रेम देखकर उद्धव का ज्ञान गर्व गलित होता है और गोपिकाओं की

ही व भगवान् का अत्यन्त प्रियपात्र समझने लगते हैं। इतना ही नहीं बल्कि उन भक्त गोपिकाओं के दर्शन मात्र से अपने को कृतकृत्य समझते हैं।

भक्तकवि नन्ददास का उद्देश्य यही था। गीता में भगवान् ने भक्त चार प्रकार के बतलाये हैं—आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी। निस्सन्देह ज्ञानी भक्त भगवान् को सब से अधिक प्रिय है, परन्तु ज्ञान का मार्ग कृपाण की धार के सदृश तीक्ष्ण है, और सर्वसाधारण जनता के लिए यह सुकर और सुलभ भी नहीं है। ज्ञान के मार्ग में अनेक खतरे हैं। इसलिए चारों प्रकार के भक्तों में ज्ञानी सर्वश्रेष्ठ होने पर भी व्यावहारिक दृष्टि से उसकी श्रेष्ठता का कोई अर्थ नहीं। अर्थात् निर्गुण की उपासना श्रेष्ठ होने पर भी सगुण की तरह सर्वसाधारण के लिए सुलभ नहीं। अतएव हमारे भक्त कवियों ने, *भागवतधर्म के अनुसार, सगुण भक्ति की ही, जनता के हित की दृष्टि से,* स्थापना की है। सगुण भक्ति के लिए जप, तप, अथवा हठयोग के समान दुष्कर साधना की आवश्यकता नहीं। किसी भी एक चीज को निर्गुण परब्रह्म का प्रतीक मान लीजिए। उसके लिए आत्मसमर्पण करना ही सगुण भक्ति का लक्षण है।

नन्ददास जी ने भी गोपियों को आगे करके अपनी रास पंचाध्यायी और भँवरगीत में सगुण भक्ति का ही उच्च आदर्श जनता के सन्मुख रखा है। स्त्री हो, वैश्य हो, शूद्र हो,—कोई भी जाति हो, किसी पेशा का आदमी हो, सगुण भक्ति के द्वारा वह सहज ही परमगति को प्राप्त कर सकता है। गोपियों की तरह स्त्रियों में साधारण तौर पर कहाँ वह बुद्धि और शक्ति होती है कि वे जप, तप और हठयोग के समान साधना के द्वारा निर्गुण ब्रह्म को समझने का प्रयत्न करें, परन्तु हाँ, भगवान् कृष्ण के सगुण और रमणीय स्वरूप को प्रतीक मान कर, सांसारिक कर्तव्य करते हुए भी, वे एकान्तिक प्रेम के द्वारा परब्रह्म का आनन्दानुभव कर सकती हैं। यही बात भगवान् कृष्ण गीता में स्वयं कहते हैं—

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥ ५ ॥
ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥ ६ ॥
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥ ७ ॥
भ० गी० अ० १२

अर्थात् अव्यक्त निर्गुण में चित्त लगाने वाले को बड़ी तकलीफ होती है, क्योंकि निर्गुण ब्रह्म बड़ी कठिनाई से प्राप्त होता है। इसलिए मुझपर एकान्तिक प्रेम रखते हुए जो लोग अपने सारे सांसारिक कर्मों को, मेरे ही लिए करते हुए, मुझको ही समर्पित करते हैं,—इस प्रकार जो मुझ में अनन्य होकर, मेरा ही ध्यान करते हुए, मेरी ही भक्ति में लवलीन रहते हैं,—एकमात्र मुझ में ही चित्त को लगाये रखते हैं, उनको मैं अनायास मृत्यु-संसार-सागर से पार करके परमपद प्राप्त कराता हूँ। यही गोपियों की सुलभ भक्ति थी, जिसको नन्ददास जी ने अपनी अनुपम प्रतिभा और कवित्वशक्ति के द्वारा सर्वसाधारण जनता के सम्मुख रखा है। '

रास-पंचाध्यायी

॥ श्री ॥

महा-कवि नंददासजी प्रणीत

रास-पंचाध्यायी

बन्दन करौं कृपा-निधान, श्री सुक सुभकारी।
सुद्ध[1]-जोति-मै-रूप, सदा सुन्दर अविकारी ॥१॥

हरि-लीला रस-मत्त मुदित नित विचरति जग में।
अद्भुत-गति कतहूँ न अटक ह्वै निसरति मग[2] मैं ॥२॥

नीलोत्पल-दल-स्याम-अंग, नव-जोबन भ्राजै।
कुटिल-अलक मुख-कमल मनौ अलि-अवलि[1] बिराजै ॥३॥

सुन्दर[3]-भाल विसाल, दिपति मनो निकर निसाकर।
कृष्ण-भक्ति[4]-प्रतिबन्ध तिमिर कौं, कोटि-दिवाकर ॥४॥

पाठान्तर—

(च) १—परम-ज्योतिमय रूप।
„ २—जग म।
(क) ३—ललित सुभाल विसाल।
„ ४—प्रतिबिम्ब।

कृपा-रँग-रस-ऐंन, नैंन राजत रतनारे।
कृष्ण[1]-रसासव-पान, अलस[2] कछु घूँम-घुँमारे ॥५॥

स्रवन[3] कृष्ण-रस भरन गंड-मंडल भल दरसैं।
प्रैमानंद मिलि तासु, मन्द-मुसिकन-मधु-बरसैं ॥६॥

उन्नत-नासा, अधर-बिम्ब, सुक की छवि छीनीं।
तिन[4] मधि अदभुत-भाँति लसति कछु इक मसि भींनीं ॥७॥

कंबु-कंठ की रेख देख, हरि-धरम प्रकासैं।
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, जिहिं निरखति नासैं ॥८॥

उर बर पैं[5] अति-छबि की भीर, कछु बरनि न जाई।†
जिहिं भीतर जगमगत निरन्तर कुँवर-कन्हाई ॥९॥

पाठान्तर—

(ग) १—कृष्ण-रसामृत।

(रा०) २—करत।

(रा०) ३—स्रवन कृष्ण-रस-भवत गंड-मंडल भल दरसैं।
प्रेमानन्द-मलिन्द-मन्द मुसकनि मधु बरसैं॥

(च) ४—तिनबिच अद्‌भुत-भाँति लसै जु कछुक मसि भींनी।

(रा०) „ तिन महँ अद्‌भुत-भाँति जु कछुक लसति मसि भीनी॥

(ट) ५—पर।

† उक्त पद में "अति छबि की" 'की' को ह्रस्व रूप से पढ़ना चाहिये, जिससे छंद में एक मात्रा न बढ़े और "यतिभंग दोष" भी न हो। नंददास जी ने प्रायः (अन्यत्र भी) ऐसा ही व्यवहार किया है।

सुन्दर-उदर उदार, रुमावलि राजति भारी।
[1]हिअ-सरवर-रस-पूरि, चली जनु उँमगि पनारी ॥१०॥

[2]ता-रस की कुंडिका-नाभि, सोभित अस गहरी।
त्रिवली ता मैं ललित-भाँति जनु उपजति लहरी ॥११॥*

अति[3]-सुदेस कटि-देस सिंह सोभित सघनन अस।
जुव[4]-जन-मन आकरषत, वरषत प्रेम-सुधा-रस ॥१२॥†

गूढ़-जानु, आजानु-बाहु, मद-गज-गति लोलैं।
गंगादिकन पवित्र करत[5] अवनी, पैं डोलैं ॥१३॥

सुन्दर-पद-अरविन्द मधुर-मकरंद मुक्त जहँ।
मुनि-मन-मधुकर-निकर सदाँ सेवित लोभी तहँ ॥१४॥‡

पाठान्तर—

(त) १—हीयौ-सरोवर रस-भर्यौ चल्यो मधु उँमग पनारी।
(रा०) २—जिहिँ रसकी कुंडिका-नाभि सोभित अस-गहरी।
* उक्त छंद भारतेन्दु जी की प्रति—"भा० चन्द्रिका" में नहीं है।
(ग) ३—कटि-प्रदेस सुन्दर सुदेस जंघन सोभित अस।
(रा०),,—अति सुदेस कटि देस सिंह सुन्दर सोभित अस।
(च) ४—जोबन मन आकरषत,...।
,, —जुवतिन-मंन आकरमत बरमत प्रेम-सुधारस॥
†, उक्त पद ट) प्रति में, और चन्द्रिका में नहीं है।
(क) ५—करन।
‡ उक्त पद (ख) प्रति में और "भा० चन्द्रिका" में नहीं है।

जब दिन-मनि श्री कृष्ण, दृगन तैं दूरि भए दुरि ।
पसरि पर्यौ अँधियारि, सकल-संसार घुँमड़ि-घुरि ॥१५॥

तिमिर-ग्रसित सब-लोक-ओक दुखि देखि[1] दयाकर ।
प्रगट कियौ अद्भुत प्रभाव, भागवत[2] जु बिभाकर ॥१६॥*

जे सँसार अँधियार[3]-गार में मगन भए परि ।
तिन-हित अद्भुत-दीप प्रकट कीनौं जु कृपाकरि ॥१७॥†

श्रीभागवत सुभ[4] नाम, परम-अभिराम अमित-गति[5] ।
निगम-सार, सुक[6]-सार, बिना-गुरु-कृपा अगम अति ॥१८॥

ताहू[7] मैं पुनि अति-रहस्य यह पंचध्याई ।
तन मैं जैसैं पंच-प्रान, अस सुक मुनि गाई ॥१९॥

पाठान्तर—

(रा०) १—लखि दुखित दयाकर ।
(प) ,,—बिकल जब देखि दयाकर ।
(द) २—श्रीमान...।
* उक्त पद (ग) प्रति में और "भा० चन्द्रिका" में नहीं है ।
(ट) ३—असार अगर में...।
† उक्त पद "भा० चन्द्रिका" में नहीं है ।
(क) ४—सो नाम...।
,, ५—परम रति ।
(च) ,,—प्रेम-मति ।
(प) ६—निरधार...।
(झ) ७—ताही मैं मनि अति...।

परम-रसिक इक मित्र, मोहि तिन आग्या दीनी।
ताही[1] तैं यह कथा, जथा मति भाषा कीनी ॥२०॥

श्री वृन्दावन-वर्णन

अब[2] सुन्दर श्री वृन्दावन कौ गाइ सुनाऊँ।
[3]सकल-सिद्धि-दाइक, नाइक, सब ही विधि पाऊँ ॥२१॥*

श्री वृन्दावन चिदघन, कछु छवि वरनि न जाई।
कृष्ण ललित-लीला के काज धरि रह्यौ जड़ताई ॥२२॥†

जहँ[4] नग, खग, मृग, लता, कुंज विरुध-तन जेते।
परत न काल-प्रभाव, सदाँ सोभित हैं तेते ॥२३॥

पाठान्तर—

(ग) १—आपुन विरद विछान जान निज करना कीनी,
(च) ,,—तातैं मे यह कथा जथा मति भाषा कीनी।
(च) २—अति-सुन्दर अब वृन्दावन कों ।
(ट) ,,—अब सुन्दर श्री वृन्दावन-गुन-गाइ सुनाऊँ।
(त) ,,—अब सुन्दर श्री वृन्दावन—कछु गाइ सुनाऊँ।
(प) ३—परम-प्रीति, रस-रीति, प्रेम परिपूरन पाऊँ।
(ट) ,,—सब विधि सुधि पाऊँ।

*उक्त पद (क) प्रति में नहीं है।

† यह पद (ग) (म) (च) प्रतियों में नहीं हैं।

(च) ४—पुनि तहँ खग मृग ।
(रा०) ,,—जहँ मृग, खग, नग कुञ्ज ।
,, ,,—नहिं न काल गुन प्रभा सदाँ सोभित रहैं तेते ॥

सकल जन्तु अविरुद्धि जहाँ हरि मृग सँग चरहीं ।
काम, क्रोध, मद, लोभ-रहित लीला अनुसरहीं ॥२४॥
सब[1] ऋतु संत वसंत, रहति जहँ दिन-मनि ओभा ।
ऑन[2] वनन जाकी विभूति करि सोभित-सोभा ॥२५॥
जो[3] लछमी निज रूप-अनूप[4] चरन सेवति नित ।
भ्रू[5] विलसति जु विभूति जगत जगमग रहि जित-तित ॥२६
श्री अनन्त, महिमा-अनन्त, को बरनि सकै कवि ।
संकरसन सौं कछुक कही श्रीमुख[6] जाकी छवि ॥२७॥
[7]देवन मैं श्री रमा-रमन नाराइन प्रभु जस ।
कानन[8] मैं श्री वृन्दावन, सब-दिन सोभित अस ॥२८॥*

पाठान्तर—

(प) १—सब दिन रहति वसंत कृष्ण-अवलोकनि लोभा ।
(रा०) ,,—सब दिन रहत वसंत लसै तहँ दिन-दिन लोभा ।
(क) २—त्रिभुवन कानन जा विभूति . ।
(ख) ,,—आनन्द लता विभूति काल सोभित जहँ सोभा ।
(रा०) सब कानन जाकी...।
(ग) ३—ज्यौं.. ।
४—रवति . ।
(च) ५—भू ।
(च) ६—सुन्दर जाकी ।
(रा०) ७—*देवन मैं श्री रमा-रमन नाराइन जैसैं ।
कानन मैं श्री वृन्दावन सोभित है ऐसैं ॥
(क) ८—वनन माहिं वृन्दावन सुदेस...।

या बन की बर[1]-बानक, या बन-हीं-बन आवै ।
सेस, महेस, सुरेस, गनेसहु, पार न पावै ॥२९॥

जहँ जेतिक द्रुम-जाति, कलपद्रुम सम सब लाइक ।
चिन्तामनि सी[2] भूमि, सबै चिन्तति फल-दाइक ॥३०॥

तिन-मधि इक जु कलपतरु[3] लगि रही जगमग-जोती ।
पत्र, मूल, फल, फूल सकल, हीरा, मनि[4] मोती ॥३१॥

तिन-मधि तिन के गन्ध[5] लुब्ध, अस[6] गान करति अलि ।
बरु किन्नर, गन्धरब, अपछरा, तिन पैं गई बलि ॥३२॥

अमृत-फुही, सुख-गुही, सुही, ज्यौं परति रहति नित ।
रास-रसिक सुन्दर-पिय के[7] स्रम दूरि करन हित ॥३३॥

पाठान्तर—

(प) १—बनि ।
(प) २—सै.. ।
(क) ,,—सम, सकल भूमि चिन्तनि फल दाइक ।
(ट) ३—कलपवृच्छ बर जगमग-जोती ।
,, ४—पात मूल फल.. ।
(प) ५—तिन मौतिन के गन्ध.. ।
(च) ६—अति... ।
(च) ७—कौ.. ।

तिहिं[1] सुर-तरु मधि औरु[2] एक अदभुत-छवि छाजै ।
साखा, दल, फल, फूलन,[3] हरि-प्रतिबिम्ब विराजै ॥३४॥

ता तरु कौमल-कनक-भूमि-मनि[4]-मैं मोहत मन ।
लखियतु[5] सब प्रतिबिम्ब, मनहुँ घर मैं दूजौ[6] बन ॥३५॥

थलज[7] जलज झलमलत, ललित बहु भँवर उड़ावै ।
उड़ि-उड़ि परत पराग, बिमल-छवि कहति न आवै ॥३६॥

जमुना जू अति-प्रेम-भरी, तट बहति जु गहरी ।
मनि[8]-मंडित महि माँझि, दुरि लौं उपजति[9] लहरी ॥३७॥

पाठान्तर—

(ट) १—ता.. ।
,,—बा.
,, २—अवर...।
(च) ३—फूल कृष्ण प्रति ..।
(प) ४—मव कौ सोहत मन ।
(प) ५—दिखियतु ..।
६—दूसर.. ।
(क) ७—थल जल झलकत झलमलात अति भँवर उड़ावैं ।
(च) ८—मनि-मंदिर दोऊ तीर उठैं, छवि अति भरि लहरी ।
(रा०) ९—मनि-मंडित महि माँहिं, दौरि जनु उपजत लहरी ।
(प) ,,—अदभुत-लहरी ।

ँ इक मनि-मै-सिंह-पीठि[1] सोभित सुन्दर-अति ।
पै षोड़स-दल-सरोज अद्भुत चक्राकृति ॥३८॥

थे, कमनीय करनिका,[2] सब सुख सुन्दर[3] कन्दर ।
ँ खेलति ब्रजराज-कुँवर-वर[4] रसिक-पुरन्दर ॥३९॥

श्रीकृष्ण-स्वरूप-वर्णन

कर बिभाकर दुति[5] मैंदति सुभ-कौस्तुभ-मनि अस ।
न्दर[6] नंद-कुँवर-उर पैं सोई लागत उड़ जस ॥४०॥

हन अद्भुत-रूप कहि न आवै छवि ताकी ।
खिल-अंड-व्यापी जु ब्रह्म, आभा कछु जाकी ॥४१॥

ाठान्तर—

(प) १—हृक-बिंसति कौसक सुभग-अति ।
(क) ,,—श्रंक-चित्र कौ संघ सुभग-अति ।
(ट) २—मधु. ।
(,,) ३—कन्दर-सुन्दर ।
(ट) ४—राजमति . ।
(प) ५—निकर बिभाकर-दुति मैंदति, सुभ-मनि-कौसुभ अस ।
(च) ६—हरि जू कै उर निबिड, रुचिर सौं लागत उड़ जस ॥

परमातम,[1] परब्रह्म, सबन के अंतरजामी ।
नाराइन-भगवान, धरम करि सब के स्वामी ॥४२॥

बाल,[2] कुमार, पौगंड-धरम आक्रान्त लसत तन ।
धरमी नित्त किसोर-कान्ह, मोहत सब कौ मन ॥४३॥

मृदु-उज्जल स्यामल सु अंग, अदभुत-सिँगार करि ।
नवल-किसोर सु मोर-चंद्रिका, सुभग-सीस धरि ॥४४॥*

गल[3] मुक्तन की माल, लाल बनमाल धरैं पिय ।
मंद[4]-मरुत-वस पीत-वसन, फरकत करखत हिय ॥४५॥†

अस अदभुत गोपाल-लाल, सब-काल बसत जहँ ।
ताही तें बैकुंठ[5]-विभव, कुंठित लागत तहँ ॥४६॥

पाठान्तर—

(क) १—परम-आतमा राम, धरम कर अंतर जामी ।
(ट) ,,—परमातम धुरि धरम, सबन के अंतरजामी ।
(च) ,,—सरब आतमाराम...।
(ट) २—सिसु, कुमार, पौगंड-धरम-रुचि ललित लसत-तन ।
(प) ,,—बाल, कुँवर, पौगंड धरम आकार ललित-तन ।
*उक्त पद (क) प्रति में नहीं हैं ।
(प) ३—कँठ मुतियन की माल ल्वाल बनमाल ।
(प) ४—मंद मधुर हरि पीत-वसन, फरकत...।
† उक्त पद (क) प्रति में नहीं है ।
(प) ५—बैकुंठ-विभौ...।

सरद्-रजनी-वर्णन

जदपि[1] सहज-माधुरी, विपिन सब-दिन सुखदाई।
तदपि रँगीली-सरद-समैं मिल अति-छवि छाई ॥४७॥

ज्यौं[2] अमोल-नग जगमगाइ, सुन्दर-जराव सँग।
रूपवन्त, गुनवन्त, बहुरि[3] भूषन-भूषित-अँग ॥४८॥

रजनी-मुख-सुख देखि,[4] ललित मुकुलित जु मालती।
ज्यौं नव-जोवन पाइ, लसति गुनवती बाल-ती[5] ॥४९॥

छवि सौं फूले[6]-फूल अवर अस लगी लुनाई।
मनौं[7] सरद की छपा छबीली बिलसति आई ॥५०॥

पाठान्तर—

(रा०) १—सहज-माधुरी वृन्दावन, सबदिन सुखदाई।
(प) २—ज्यौं अद्भुतनग जगमगात, सुन्दर जराव-सँग।
(प) ३—भूरि...।
(क) ४—देति ललित प्रफुलित जु मालतिय।
(क) ५—तिय।
(ट) ६—फूले और फूल, अस लगी लुनाई।
(रा०) ,, छवि सौं फूले फूल, अतुल अस लगी लुनाई।
(भ) ,,—नव-फूलन सौं फूलि फूल, अस लगति लुनाई।
(प) ७—मनहुँ... ... ...छिपा, विहँसति आई ॥
(भ) ,,—सरद छबीली छपा हँसति छवि सौं मनुआई ॥

चन्द्रोदय-वर्णन

ताही[1] छिन उड़राज उदित, रस-रास-सहाइक ।
कुंकुम[2]-मंडित प्रिया-बदन, जनु नागर-नाइक ॥५१॥

कोमल[3]-किरन-अरुन नभ बन[4] मै व्यापि रही यों ।
मनसिज खेल्यौ फागु, घुँमरि घुरि रह्यौ गुलाल ज्यौं[5] ॥५२॥

फटिक-छंटा[6] सी किरन कुंज-रन्ध्रन ह्वै आई ।
मानौ वितन वितान, सुदेस तनाव तनाई ॥५३॥

मन्द-मन्द चलि चारु[7] चन्द्रमा, अस[8] छवि छाई ।
उझकत हैं जनु रमा-रमन-पिय, कौतुक पाई ॥५४॥

पाठान्तर—

(च) १—ताही समै उड्डिराज उदित रसराज सहायक ।
(रा०) ,,—रितुराज ।
(प) २—कुम कुम . . . मनु नागर-नायक ।
(क) ३—कोमल-किरन अरुनिमा, बन घन व्याप रही यौं ।
(ट) ४—घन मैं व्याप . ।
(ख) ,,—अरुन मानौं बन व्याप . ।
(फ) ,,—अरुन वा घर मैं व्याप ।
(रा०) ,,—अस ।
(,,) ५—जस ।
(अ) ६—स्फटिक छवी सी किरन कुञ्ज-रन्ध्रन जब आई ।
(क) ७—चाल, चन्द्रमा यौं छवि पाई ।
(छ) ८—अति . ।

मुरली-महिमा

तव[1] लीनीं कर-कमल, जोगमाया सी मुरली।
अघटित-घटना चतुर, बहुरि अधरन[2]-रस-जुरली ॥५५॥
जाकी धुनि तें अगम, निगम, प्रगटे बड़-नागर।
नाँद-ब्रह्म की जननि मौंहनी सब-सुख-सागर ॥५६॥
पुनि मौंहन सौं मिली, कछुक कल-गान कियौ अस[3]।
बाम-बिलोचन बाल[4]-तियन-मन-हरन होइ जस ॥५७॥
मौंहन-मुरली-नाँद, स्रवन[5] कीनौं सब किनहूँ।
जथा[6]-जथा बिधि-रूप, तथा बिधि परस्यौ तिनहूँ ॥५८॥
तरनि-किरन[7] ज्यौं मनि, पखान, सबहिन कौं परसै।
सूरजकान्ति-मनि बिना, कहूँ नहिं पावक दरसै ॥५९॥

पाठान्तर—

(प) १—जब लीनी. ।
(ट) २—अधरामृत-जुरली ।
(च) ,,—अधरन सौं जुरली ।
(ज) ,,—अधरसन जुरली ।
(रा०) ३—नागर नवल-किसोर कान्ह,-कल-गान कियौ अस ।
(क ४—बानन कौं-मन हरन ।
(रा०) ५. कियो सु सुन्यौ सब किनहीं ।
(क) ,,—अमृत-धुनि सुनि सब किनहीं ।
(च) ६—जथा सुपद सुभ-रूप, तथा-विधि परस्यौ तिनहीं ।
(क) ७—तरनि-किरन जस मनि पखान, सबही सौं परसै ।

सुनति चलीं ब्रज-बधू, गीत-धुनि कौ मारग गहिं ।
भवन-भीति द्रुम-कुंज-पुंज, कित हूँ अटकीं नहिं ॥६०॥

नाँद[1]-ब्रह्म कौ पथ रँगीलौ, सूच्छम-भारी ।
तिहि[2] मग ब्रज-तिय चलीं, आँन कोऊ नहिं अधिकारी ॥६१॥

सुद्ध-प्रेम-मय रूप, पंच[3]-भूतन तें न्यारी ।
तिन्हें कहा कोऊ कहै, जोति[4] सी जग उजियारी ॥६२॥

जे[5] रुकि गईं घर अति-अधीर, गुनमय सरीर बस ।
पुन्न[6], पाप, प्रारब्ध रच्यौ, तन पच्यौ नाहिं रस ॥६३॥

परम-दुसह-श्रीकृष्ण-बिरह-दुख ब्याप्यौ तन[7] में ।
कोटि-बरस लौं नरक-भोग-अघ, भुगते छन[8] में ॥६४॥

पाठान्तर—

(ल) १—नाँद-अमृत . ।
(रा०) ,,—राग-अमृत ।
(च) २—तिहि ब्रज-तिय भल चलीं...।
(त) ३—सुद्ध-जोति-मै-रूप, पंच भौतिक तें न्यारी ।
(च) ४—जोति सी जगत उजारी ।
(रा०) ५—जे रहि गईं घर अति अधीर.. ।
(ल) ६—पाप पुन्न प्रारब्ध रच्यौ तन, नाहिं पच्यौ रस ।
(क) ७—जिन में ।
(ग) ,,—तिन में ।
(प) ८—छिन में ।

पुनि[1] रंचक धरि ध्यान, पीय[2] परिरंभ दियौ जब ।
कोटि-सरग-सुख-भोग, छिनक[3] मंगल भुगते सब ॥६५॥

लोह[4]-पात्र पाखान-परसि कंचन ह्वै सोहै ।
[5]नंद-सुवन कौं परसि प्रेम, यह अचरज को है ॥६६॥

ते[6] पुनि तिहिँ मग चलीं, रँगाली तजि गृह-संगम ।
जनु[7], पिंजरन तैं छुटे, घुटे नव-प्रेम विहंगम ॥६७॥

कोउ तरुनी गुनमै[8] सरीर, तिन संग चली झुकि ।
मात, पिता, पति, बन्धु, रहे झुकि, झुकि न रहीं रुकि ॥६८॥†

पाठान्तर—

(रा०) १—जिय पिय कौ धरि ध्यान तनकि आलिंगन किय जब ।

(क) २—पिया...।

(प) ३—छीन कीने मंगल-सब ।

(रा०) ४—इतर-धातु पाँहनहिं परसि कंचन ह्वै सोहै ।

(प) „—धातु-पात्र...।

(„) ५—नंद सुवन सौं परम-प्रेम यह अचरज को है ।

(ढ) ६—तेउ पुनि तिहि...।

(„) ७—जनु पिँजरन तैं उड़े छुटे जव-प्रेम-विहंगम ।

(क) ८—गुनमय सरीर ही सहित चली टुकि ।

† उक्त पद्य (ट) प्रति में नहीं है ।

सावन-सरिता रुकैं[१] कहुँ करौं कोटि-जतन-अति[२] ।
कृष्ण-हरे[३] जिन के मन ते क्यों रुकैं अगम-गति ॥६९॥

[४]चलति अधिक छवि फवति, स्रवन मनि कुंडल झलकैं ।
संकित लोचन चपल चारु, नव-विलुलित-अलकैं ॥७०॥

जदपि[५] कहूँ-के-कहूँ तियन[६] आभरन बनाए ।
हरि-पिय पैं अनुसरत, जहाँ के तहँ चलि आए ॥७१॥@

कहुँ लखियतु कहुँ नाहिं, सखी बन बीच बनी यों ।
बिजुरिन कीसी छटा, सघन-बन माँझ चली ज्यों ॥७२॥@

पाठान्तर—

(ट) १—नाहिं रुकै करौ कोटि...।
(थ) ,,—नाहिं रुकै करै कोटि...।

(रा०) २—सावन-सरिता न रुकहि करै जो जतन कोउ अति ।

(क) ३—गहे ..।

(रा०) ४—चलति अधिक-छबि फबी स्रवन में कुंडल झलकैं ।
संकित-लोचन-चपल ललित-छबि बिलुलित अलकैं ।

(क) ५—जदपि तियन आभरन कहूँ के कहूँ बनाए ।

(ट) ६—वधून...।

@ उक्त दोनों पद्य (क) प्रति में नहीं हैं ।

कुंजन-कुंजन निसरत वर-आनन सोभित अस ।
तम-कौने तैं निकर लसत राका-मयंक जस ॥७३॥

आइ उँमग सौं मिलीं रँगीली-गोप-वधू यौं[1] ।
[2]नंद-सुवन-नागर-सागरसौं, प्रैंम-नदी ज्यौं ॥७४॥

परीच्छित-प्रश्न

परम-भागवत-रतन रसिक जु परीच्छित-राजा ।
प्रस्न करयौ रस-पुष्टि करन निज-सुख के काजा ॥७५॥

[3]श्रीभागवत कौ पात्र जानि जग कौ हितकारी ।
उदर-दरी मैं करी कान्ह जाकी रखवारी ॥७६॥

जाकौं सुन्दर-स्याम-कथा छिन-छिन नई[4] लागै ।
ज्यौं लंपट पर-जुवति-वात सुनि-सुनि[5] अनुरागै ॥७७॥

पाठान्तर—

(ट) १—अस ।

(प) २—नंद-सुवन सुन्दर-सागर सौं प्रैंम-नदी जस ।
(रा०) ,,—नंद-सुवन-सागर सुन्दर सौं प्रेम-नदी जस ।

(क) ३—परम-धरम कौ पात्र जानि...।

(,,) ४—प्रिय...।

(,,) ५—अति...।

[1]अहो मुनि ! क्यों गुनमय सरीर परिहरि पाए हरि ।
[2]जानि भजे कमनीय-कान्ह, नहिँ ब्रम्ह-भाव करि ॥७८॥

उत्तर

तबै[3] कही सुकदेव देव यह अचरज नाँहीं ।
सरब-भाव-भगवान-कान्ह जिनके[4] उर माँहीं ॥७९॥

परम-दुष्ट-सिसुपाल बालपन तें निंदक-अति ।
जोगिन कौं जो दुरलभ [5]सुरलभ सो पाई गति ॥८०॥

हरि[6]-रस ओपीं गोपीं सबहि तियन तें न्यारी ।
[7]कमल-नैंन गोविन्द-चन्द की प्रानन-प्यारी ॥

पाठान्तर—

(,,) १—हे मुनि, क्यों गुनमय सरीर सौं पाए हैं हरि ।

(प) २—जो न भजे कमनीय-कान्त अति-ब्रम्ह-भाव करि ।

(क) ३—तब कहि श्री सुकदेव-देव अचरज यह नाहीं ।

(क) ४—कृष्ण जिनके मन माहीं ।

(च) ५—सुलभहि सो पाई गति...।

(च) ६—वे हरि-रस ओपी गोपी सब तियन तें न्यारी ।

(प) ७—कमल-नयन गोविंद-चंद जू की प्रान-पियारी

कृष्ण-दर्शन

तिनके[1] नूपुर-नाँद सुने, जब परम-सुहाए।
तब हरि के मन, नैंन, सिमटि सब स्रवनन आए ॥८२॥

रुनुक-झुनुक पुनि[2] भली-भाँति सौं प्रगट भईं जब।
पिय के अँग-अँग सिमटि मिले[3] हैं रसिक नैंन तब ॥८३॥

सब के मुख अवलोकति, पिय के नैंन बने यौं।
सुचि[4]-सुन्दर-ससि माँझि, अरवरैं द्वै चकोर ज्यौं ॥८४॥

[5]अति-आदर करि लईं, भईं, चहुँ-दिसि ठाड़ी अनु।
छटा[6]-छबीली छेंकि रही मृदु-घन-मूरति जनु ॥८५॥

पाठान्तर—

(क) १—जिनके नुपूर-नाँद सुने अति-परम-सुहाए।

(ख) २—झनक झनक पुनि भांति-छबीली जब प्रगट भईं सब।

(,,) ३—छबीले-नैंन मिले तब।

(घ) ४—बहुत सरद-ससि...।

(,,) ५—अति-आदर करि लईं भईं पिय पैं ठाडी अनु।

(,,) ६—छटन-छबीली मिलि छेंकी मंजुल-मूरत्ति जनु।
(ट) ,,—छबिली-छटान मिलि छेक्यौ मंजुल-घन मूरति जनु।

नागर[1]वर नँद-नंद चंद, हँसि-मंद-मंद तब।
बोले बाँके-बैंन, प्रेम के परम-ऐंन-सब ॥८६॥

उज्जल-रस कौ यह सुभाव, बाँकी-छबि पावै।
बंक-चहनि, बरु बंक-कहनि, अति-रसहि बढ़ावै ॥८७॥

ए सब नवल-किसोरी, भोरी[2], भरीं नेह-रस।
तातें समझि न परीं, करीं पिय परम-प्रेम बस ॥८८॥

जैसें नाइक गुन सरूप, अति-रसिक-महा है।
सब-गुन मिथ्या होंइ, नेंकु जो बंक न चाहै ॥८९॥

त्यौं[3]कहि कैउक बचन नरस, कैउक रस-बस कर।
कहे[4] कैउक तिय-धरम, भरम-भेदक सुन्दर-बर ॥९०॥

पाठान्तर—

(प) १—नागर, नगधर, नंद चंद...।
(क) ,,—तब नागर-गुरु नंद चंद, हँसि मंद-मंद जब।

(प) २—ए सब नवल-किसोरी, गोरी भरीं-प्रेम-रस।

(,,) ३—ज्यौं सुन्दर नाइक सुख-दाइक रसिक-महा है।

(च) ४—कैउक-बचन कहि नरम, कहे कैऊ रस-बर कर।
(य) ,,—कैक बचन कहे नरम, कैक रसबर कर्मनि पर।

(प) ५—कैउक कहि तिय-धरम...।
(च) ,,—एकु कहे तिय-धरम, परम-भेदक सुन्दर-बर।

गोपी-दशा-वर्णन

लाल[1]-रसालहिं बंक-बचन सुनि, थकित भईं यौं ।
बाल[2]-मृगिनि की पाँति, सघन-बन भूलि परी ज्यौं ॥९१॥

मँद परसपर हँसीं, लसीं, तिरछी-[3]अँखियनि अस ।
रूप-उदधि इतरात, रँगीली-मीन-पाँति जस ॥९२॥

जबै कह्यौ पिय जाउ, अधिक चित-चिंता बाढ़ी ।
पुतरिनि की सी पाँति रहि गईं इक-टक ठाढ़ी ॥९३॥

[4]दुख सौं दबि छबि-सीव, ग्रीव, लै चलीं नाल सी ।
अलक-अलिन के भार, नमित जनु कमल-माल सी ॥९४॥

[5]हिय भरि बिरह-हुतास, उसासन-सँग आवत झर ।
चले कछुक मुरझाइ, मद-भरे अधर-बिंब-बर ॥९५॥

पाठान्तर—

(क) १—पिय-लालहिं के बंक ।
(ट) ,,—लाल रसिक के बंक-बचन सुनि, चकित भईं यौं ।
(ख) २—बाल-मृगन की माल, सघन...।
(त) ,,—बाल-मृगन की संगति, बन-बन भूलि...।
(क) ३—अँखियाँ-अस ।
(रा०) ४—दुख के बोझ छबि सीव, ग्रीव लै चलीं नाल सी ।
अलक अलिन के भार, निहुरि मनु कमल-नालसी ।
(ठ) ५—हिय भरि बिरह हुतासन, साँसनि सँग आवत झर ।

गोपी-कथन

[1]तन बोलीं ब्रज-बाल, लाल ! मोहन अनुरागी ।
सुन्दर गदगद-गिरा, गिरिधरहिँ, मधुरी लागी ॥९६॥

अहो मोहन ! अहो प्राननाथ !! सुन्दर[3]-सुखदाइक !!! ।
क्रूर-बचन जिनि कहौ, नाहिँ[4] ए तुम्हरे लाइक ॥९७॥

[5]जो पूँछै कोउ धरम, तवहिँ तासौं कहिऐ पिय ? ।
बिनु पूँछें हीं धरम, कितहिँ कहिऐ, दहिऐ हिय ॥९८॥

धरम[6], नैंम, जप, तप, ब्रत, संजम, फलहिँ बतावैं ।
यह कहुँ नाहिँन सुनीं, जु फल फिरि धरम सिखावैं ॥९९॥

पाठान्तर—

(य) १—तब बोली ब्रज-नवल-बाल, लालहिँ अनुरागी ।

(रा०) २—गद गद सुन्दर गिरा, गिरि-गिरिधरहि मधुरी लागी ।

(च) ३—सौहन...।

(रा०) ,,—अहो हो मोहन—प्रान-नाथ, सौहन सुखदाइक ।

(ट) ४—अहो नहिँ तुम्हरे लाइक ।

(रा०) ,,—निठुर वचन जनि कहौ,नाहिँन ए तुम्हरे लाइक ।

(ट) ५—जब कोऊ पूँछे धर्म तभी तासौं कहिये पिय ।

(क) ६—नैंम, धरम, जप, तप नहिँ कबहूँ फल जु बतावैं ।

(ङ) ,,—नैंम धरम, जप तप ए सब कोउ कहहिँ बतावैं ॥

[1]औरु तिहारौ रूप, धरम के धरम हिँ मोहै।
घर मैं को तिय भरमै, धरमैं या आगैं कोहै ॥१००॥

तैसिय पिय की मुरली, जुरली, अधर-सुधा-रस।
सुनि निज-धरम न तजै, तरुनि त्रिभुवन में को अस ॥१०१॥

[3]नग, खग औरु मृगन हूँ नाहिँन धरम रह्यौ है।
छाँनि है रहौ पिया! अब न कछु जात कह्यौ है ॥१०२*

सुन्दर पिय कौ वदन निरखि कैं[4] को नहिँ भूलैं[5]।
रूप-सरोवर माँझि सरस-अम्बुज जनु फूलैं ॥१०३॥†

[6]कुटिल अलक, मुख-कमल, मनौं मधुकर मतवारे।
तिन मैं मिलि गए चपल-नैंन, है मींन हमारे ॥११४॥‡

पाठान्तर—

(ब) १—धरु तुम्हरौ इहि रूप, धरम के भरमहिं मोहै।
धरमनु के तुम धरम, भरम या आगैं कोहै॥

(फ) २—त्यौंही पिय की मुरली, जुरली, अधर सुधा-रस।

(प) ३—नगन, खगन, औ मृगन तलक नहिँ धरम गह्यौ है।

*उक्त पद्य (क) प्रति में नहीं है।

(च) ४—को सो जुन-भूल्यौ।

(,,) ५—भूल्यो।

† उक्त पद्द (क) प्रति में नहीं है।

(ट) ६—कुटिल-अलक मनु अलबोले मधुकर मतवारे।
तिन मधि मिलि गए पिया! नैंन द्वै मधुप हमारे॥

‡ उक्त पद्द (क) प्रति में नहीं है।

चितवनि मौंहन-मंत्र, भौंह जनु मनमथ-फाँसी।
[1]निपटि-ठगौरी आहि, मंद-मुसकनि-मृदु-हाँसी ॥१०५॥*

अधर-सुधा के लोभ भई, हम दासि तिहारी।
[2]ज्यों लुब्धी पद-कमल, चंचला-कमला-नारी ॥१०६॥†

[3]जो न देहु अधरामृत, तौ सुनि सुन्दरि-हरि।
करि हैं यह तन भसम, विरह-पावक में परि-परि ॥१०७॥‡

[4]पुनि तुम्हरे पद परसि, बहुरि धरि हैं सुन्दर-अँग।
पीवहिंगीं निधरक अधरामृत, पुनि सँग-ही-सँग ॥१०८॥§

पाठान्तर—

(प) १—निपट ठगौरी आहि मन्द मृदु-मादक हाँसी।
*उक्त पद (ख) प्रति में नहीं है।

(प) २—लुब्धी ज्यौं पद कमला, नवला, चपला नारी।
† उक्त पद (ट) प्रति में नहीं है।

(ट) ३—जो न देहु यह अधर-अमृत, सुनि हो मौंहन हरि,
तौ करिहैं तन छार बार पावक मैं परि-परि॥
‡ उक्त पद (च) प्रति में नहीं है।

(ट) ४—पुनि पद पिय के परसि...।
(त) ,,—तव पिय-पदवी पाइ, बहुरि धरिहैं सुन्दर अङ्ग।
(ध) ,,—निधरक ह्वै फिरि पीवहिंगी, अधरामृत सँग ही सँग।
निधरक ह्वै इह अधर-अमृत पैहैं फिरा हैं सँग॥
§ उक्त पद (प) प्रति में नहीं है।

[1]प्रैंम-पगे सुनि बचन, आँच-सी लगी आइ जिय।
पिघलि चल्यौ नवनीत,[2]मीत सुन्दर मौंहन-हिय ॥१०९॥*

बिहँसि मिले नँदलाल, निरखि ब्रज-बाल बिरह-बस।
जदपि आतमाराम, रमत भए परम-प्रैंम-रस ॥११०॥

बिहरत बिपिन-बिहार, उदार[3]-नवल-नँदनंदन।
नव-कुमकुम-घनसारु, चारु, चरचित चित[4] चंदन ॥१११॥

अद्भुत-साँवल-अंग, बन्यौं [5]अद्भुत-पीतांबरि।
[6]मूरति धरैं सिंगार, प्रैंम-अंबर औढ़ैं-हरि ॥११२॥

पाठान्तर—

(च) १—सुनि गोपिन के बचन प्रैंम के आँच-सी लगी जिय।

(छ) २—मीत-मौंहन सुन्दर हिय।

(य) ,,—नवनीत- सदस हिय।

*उक्त पद (प) प्रति (य) और (ट) में नहीं हैं।

(ट) ३—रसिक..।

(प) ४—तन...।

(त) ५—तन पीत-बसन मनु।

(थ) ,,—पट-पीत-वसन तन।

(,,) ६—मूरति धरि सिंगार, प्रैंम-अंबर पहिरैं जनु।

(ट) ,,—मुकट धरैं सिंगार, प्रैंम-अंबर औढ़ैं हरि।

(प) ,,—प्रैंम-अंबर पहिरैं घन।

बिलुलित[1] उर-बनमाल, लाल जब चाल चलति वर।
[2]कोटि-मदन की भीर, उठति छबि लुठति पगन पर ॥११३॥❀

[3]गोपी-जन-मन-मोंहन, मोंहन लाल बने यों।
[4]अपनी दुति के उड़गन, उड़पति घन खेलति ज्यों ॥११४॥

कुंजन-कुंजन डोलति, मनु[5] घन तें घन आवत।
लोचन त्रिषित-चकोरन के चित[6] चौंप चढ़ावत ॥११५॥

सुभ[7]-सरिता के तीर, धीर, बलबीर गए तहँ।
कोमल-मलै-समीर, छबिन की महा-भीर जहँ ॥११६॥

पाठान्तर—

(त) १—बिगलति उर बनमाल, लाल जब चलत चाल वर।

(,,) २—पुनि गिरति चरन-तर।

(ध) ,,—कोटि मदन की पीर उठत इत लुठत पगन-तर।

❀ उक्त पद्य (क) और (च) प्रति में नहीं है।

(क) ३—गोपी जन मन मोंहन मोंहन लाल बने वन।

(,,) ,,—अपनी दुति के ओज लिऐं उड़पति खेलति घन॥

(ट) ,,—अपनी द्युति के उजरे-उडपति, मनु खेलति घन।

(प) ४—"अपनी-अपनी दुति के उडपति घन खेलत ज्यौं।

(क) ५—जनु घन तैं घन आवन।

(ठ) ,,—मनु चौंप बढ़ावन।

(ट) ७—सुभग-बिटप के तीर . ।

(त) ,,—सुभग-सरित के तीर धीर ..।

कुसुम-धूरि धुँधरी कुंज, छवि-पुंजन छाई ।
[1]गुंजत मंजु मलिंद, वेनु जनु बजति सुहाई ॥११७॥

इत महकति मालती, चारु[2] चंपक चित-चोरत ।
उत[3] घनसार, तुसार, मिली मंदार झकोरत ॥११८॥

[4]इत लवंग-नव-रंग, एलची झेलि रही रस ।
[5]उत कुरवक, केवरौ, केतकी गंध-बंध-बस ॥११९॥

इत तुलसी छवि-हुलसी, छाँड़ति [6]परिमल-पूटैं ।
उत कमोद-[7]आमोद, मोद, भरि-भरि सुख लूटैं ॥१२०॥

फूलन-माल बनाइ, लाल पहिरति[8]-पहिरावति ।
सुमन सरोज सुधावर, ओज मनोज बढ़ावति ॥१२१॥*

पाठान्तर—

(ट) १—गुंजत मंजु अलिन्द, वैनु सी बजत सुहाई ।
(त) २—उतै चंपक चित चोरत ।
(छ) ३—"औ...।
(च) ,,—मरु...।
(प) ,,—इत घनसार तुषार, मलै-मन्दार झकोरत ।
(ग) ४—गाइबेलि अरु एल-बेलि, मृगमदहिं वेलि इत ।
(,,) ५—नव-कुरवक, केवरौ, केतकी-गंध बंधु-उत ।
(त) ६—प्रबल जु लपटैं ।
(क) ७—असमोद मोद भरि-भरि सुख दपटैं ।
(ट) ८—सुधावल ।

* उक्त पद्य (क) और (च) प्रति में नहीं है ।

[1]उज्जल-मृदु बालुका, पुलिन अति-सरस सुहाई ।
[2]जमुना जू निज ??-तरंग करि, आपु बनाई ॥१२२॥

बैठे तहँ सुन्दर सुजान, [3]सब सुख-निधान हरि ।
विलसात विविध-विलास,[4]हास-रस-हिय-हुलास-भरि १२३ *

[5]परिरंभन, मुख-चुंबन, कच, कुच, नीवी परसत ।
[6]सरसत प्रेम अनंग, रंग नव-घन ज्यौं बरसत ॥१२४॥

अनंग-आगमन

[7]तब आयौ वह "काम", पंचसर कर हैं जाकें ।
[8]ब्रम्हादिक कौं जीति, बढ़ि[9] रह्यौ अति-मद ताकें ॥१२५॥

पाठान्तर—

(क) १—उज्जल मृदुल बालुका, कोमल सुभग सुहाई ।
(,,) २—श्री जमुना जू निज तरंग करि, यह जु बनाई ॥
(प) ३—सुख के निधान हरि ।
(भ) ,,—सब गुन निधान–हरि ।
(च) ४—अति-आँनद भरि ।
* उक्त पद्य (क) और (ट) प्रति में नहीं है ।
(य) ५—परिंभन-चुंबन कर, नख, नीवी-कुच परसन ।
(रा०) ६—बरसत हिऐं अनंग-रंग जच-घन ज्यौं बरसन ।
(ठ) ७—तहँ आयौ यह मैन...।
(य) ,,—गरब अति बढ़ि रह्यौ ताकैं ।
(च) ८—ब्रह्मादिक सिव जीत, बढ़ि रह्यौ अति मदु ताकैं ।

निरखि व्रज-वधू संग, रंग-भीने किसोर तन।
[1]हरि, मनमथ कर मथ्यौ, उलटि वा मनमथ कौ मन ॥१२६॥ॐ

[2]मुरछि परयौ तहँ मैंन, कहूँ धनु, कहूँ विसिख वर।
रति, देखति पति-दसा भीति ह्वै मारति उर-कर ॥१२७॥

[3]पुनि-पुनि पिय-अवलोकति, रोवति, अति-अनुरागी।
मदन-बदन अंमृत-चुवाइ, भुज-भरि लै भागी ॥१२८॥

[4]अस अद्‌भुत मोहन-पिय सौं मिलि, गोप-दुलारी।
[5]अचरज नहिं जो गरब करैं, हरि जू की प्यारी ॥१२९॥

पाठान्तर—

(ख) १—हरि मनमथ कौ मथ्यौ...।

ॐ उक्त पद्य (च) (घ) और (ङ) प्रति में नहीं हैं।

(क) २—मुरछि परयौ लखि मैंन, कहूँ धनु, कहूँ निषंग वर।
देखति रति, पति-दसा भीति भई मारति हिय कर।
(रा०) ,,—लखि रति पति की दसा, भीति भई मारत उर कर।

(क) ३—पुनि-पुनि पियहिं अलिंगति रोवति ...।

(ख) ४—अद्‌भुत अस मोहन-पिय सौं मिलि गोप-कुमारी।
(ग) ,,—अस अद्‌भुत पिय—मोहन सौं मिलि गोप...।
अचरज नाहिंन गरब होइ, गिरिधर की प्यारी।

(च) ५—नहिं अचरजु जौ गरब करैं, गिरिधर जु की प्यारी।

रूप भरीं, गुनभरीं, भरीं पुनि परम-प्रेम-रस ।
[1]क्यों न करें अभिमान, भयौ मौंहन जिनि के बस ॥१३०॥

[2]नदी-नीर गंभीर, नहीं भल भँवरी परहीं ।
[3]छिल-छिल सलिल न परैं, परैं नौ छवि नहिं [4]करहीं॥१३१॥

[5]प्रेम-पुंज बरधन कारन, ब्रजराज-कुँवर-पिय ।
[6]मंजु-कुंज में तनक दुरे, अति प्रेम-भरे-हिय ॥१३२॥

इति श्रीमद्भागवते-महापुराणे रास-क्रीड़ा वर्णन
रसिक जीवन-प्राणनाम प्रथमोऽध्यायः ।*

पाठान्तर—

(ट) १—करैं क्यों न अभिमान, कान्ह-भगवान किए बस ।
(च) ,,—क्यों न करैं अभिमान, कियौ मौंहन अपने बस ॥
(छ) २—जहँ नदि-नीर-गँभीर, तहाँ जल भँवरी परईं ।
(प) ३—सलिल न परैं, छिल-छिले, परैं पै छवि ना करहीं ॥
(रा०) ४—करईं ।
(य) ५—प्रेमहिं पुंज बढ़ावन, कारन प्यारौ मौंहन-पिय ।
(ट) ,,—प्रेम जु पुंज बढ़ावन, सिरी ब्रजराज कुँवर पिय ।
(,,) ६—कुंज-मंजु में दुरे नैंकु, अति भरयौ प्रेम-हिय ॥

* श्रीमद्भागवत् में उक्त अध्याय का नाम "भगवत्-रास-क्रीड़ा-वर्णन" करके लिखा है ।

द्वितीय अध्याय

[1]मधुर-वस्तु जे खात, निरंतर सुख नौं भारी
बिच-बिच कटु औ अम्ल, तिक्त तैं अति रुचिकारी ॥१॥*

[2]ज्यौं पट पुट कें दिऐं, निपट-अति-सरस परै रँग ।
[3]तैसैंई रंचक-बिरह, प्रैम कौ पुंज बढ़ै अँग ॥२॥

पाठान्तर—

(त) १—वस्तु-मधुर जो खाइ, निरंतर सुख ह्वै भारी ।
बीच-बीच कटु, अमल, तिक्त, अतिसै रुचिकारी ॥

* राधाकृष्ण दास जी ने उक्त पद्य का पाठ, मूल में इस प्रकार लिखा है—
ज्यौं कोउ परम मधुर मिश्री सो खात निरन्तर ।
बीच बीच सन्धान, निकत-रस अतिसय रुचिकर ॥

(अ) २—जैसैं पट पुट दऐं, निपट अति चढ़ै सरस रँग ।
(क) ,,—ज्यो पटु पुट के दिऐं, निपट ही रसहि परत रँग ।
(ट) ,,—ज्यो पट कों पुट दऐं, सरस अति चढ़े निपट रँग ।

(,,) ३—त्योंई रंचक बिरह, बढ़ावत प्रैंम पुञ अँग ॥
(च) ,,—तेसैंहो पर बिरह, प्रैंम के पुंज बढ़ै अँग ॥
(छ) ,,—रंच-बिरह के बढ़ें, प्रैंम के पुंज प्रगट अँग ॥

[1]जिन कौं नैंन-निमिष-ओट कोटन-जुग जाहीं ।
[2]तिन कौं घर, वन, कुंज, ओट दुख-गनना नाहीं ॥३॥

[3]ठगी गई ब्रज-बाल, लाल गिरिधर-पिय-बिन यौं ।
[4]निधन महा-धन पाइ, [5]बहुरि फिरी जाइ खोइ त्यौं ॥४॥

[6]ह्वै गईं बिरह-बिकल सब पूँछति द्रुम, वेली, बन ।
[7]को जड़, को चैतन्न, न जानति कछु बिरही-जन ॥५॥

पाठान्तर—

(क) १—जिनके नेननि-निमिष-ओट, कोटिक-जुग जाहीं ।

(प) २—तिन कौं गहवर-कुंज ओट-दुख गनना नाहीं ॥
(फ) ,,—तिनके ग्रह, बन, कुंज ओट, दुख अगनित आँहीं ॥

(च) ३—रहीं ठगी सी बाल, लाल-गिरधर पिय बिनु यौं ।
(प) ,,—ठगि सी रहीं ब्रज बाल . ।
(रा०) ,,—थकि सी रहीं ब्रजबाल...।

(स) ४—निधन महा-धन पाइ, बहुरि ज्यौं जाइ भई त्यौं ॥
(रा०) ५—बहुरि पुनि जाल रहै त्यौं ॥

(छ) ६—ह्वै गई बिरह-बिकल, मन पूँछति द्रुम, वेली बन ।
(द) ,,—ह्वै गई बिरह बिकल, सब बूझत द्रुम, वेली, बन ।

(ज) ७—को जड़, को चैतन्य, न जानैं कछु बिरही-जन ॥
(ट) ,,—जड़ को, को चैतन्य, कछु न जानति बिरही-जन ॥

[१]हे मालति ! हे जाति-जूथि के !! सुनि हित दै-चित ।
मान-हरन, मन-हरन, लाल-गिरिधरन लखे इत ॥६॥

[२]हे केतकि ! इत तैं चितए, कितहूँ पिय रूसे ।
[३]कै नँद-नंदन मंद-मुसकि, तुमरे मन-मूँसे ॥७॥

[४]हे मुक्ताफल-बेलि ! धरैं मुक्ताफल-माला ।
[५]निरखे नैंन-बिसाल, लाल-मोहन नँदलाला ॥८॥

पाठान्तर—

(क) १—हे मालती ! हे जाति जूथि !! सुनि दे हित-चित ।
मान-हरन मन-हरन गिरिधरन-लाल लखे इत ॥

(क) २—हे कतकी ! इत तू कितहूँ चितए पिय रूसे ।
(ख) ,,—अहो केतकि ! इत कित हू तुम चितए पिय-रूसे ।
(घ) ,,—हे कतकी ! कितहूँ इत तैं चितए पिय-रूसे ।

(च) ३—कै मन-मोंहन मुसकि-मन्द, तुव मन मूँसे ॥
(प) ,,—नद-नँदन किधौं मंद-मुसकि तुम्हरे मन-मूँसे ॥
(फ) ,,—किधौं नँद-नदन मंद-मुसकि तुमरेउ मन-मूसे ॥
(ब) ,,—नँदनंदन कै मुरि मुसिकन, तुमरेउ मन मूसे ॥

(ख) ४—अहो. ।

(ट) ५—देखे नैंन-बिसाल, मोंहना नँद के लाला ॥
(च) ,,—देखे कहुँ बिसाल-नैन, तैं नँद के लाला ॥
(भ) ,,—देखे नैंन-बिसाला, मोंहन नँद के लाला ॥

[1]हे मन्दार उदार बीर ! करबीर महा-मति ।
देखे कहुँ बलबीर, धीर, मन-हरन धीर-गति ॥९॥

[2]हे चन्दन ! दुख-दन्दन ! सब की जरनि जुड़ावौ ।
नँद-नंदन, जग-बंदन, चंदन, हमहिँ [3]बतावौ ॥१०॥

[4]पूँछौरी ! इन लतन, फूलि रहीं फूलन जोई ।
सुन्दर-पिय के परसि बिना, अस फूल न होई ॥११॥

[5]हे सखि ! ए मृग-बधू, इनहिँ किन पूँछौ अनुसरि ।
[6]डहडहे इनके नैंन, अबहिँ कहुँ देखे हैं हरि ॥१२॥

पाठान्तर—

(त) १—अहो उदार-मन्दार-बीर ! हर-पीर महा-मति ।
तैं देखे बलबीर, धीर, मन-हरन धीर-गति ॥
(अ) २—अहो चंदन, सुख-कंदन, दुख सब जरत सिरावहु ।
(क) ,,—हे दुख-कंदन ! चंदन ! सब की जरनि सिरावहु ।
जग-बंदन, नँद-नंदन, चंदन हमैं बतावहु ॥
(ग) ३—मिलावहु ॥ ...
(द) ४—बूझहुरी ! इन लतनि, फूलि रहीं फूलनि जोईं (सोंहीं) ।
सुन्दर-पिय कर-परसि बिना, अस फूलि न होइँ (होंहीं) ॥
(अ) ५—हैं सखि ! ये मृग-बधू ! इनहिँ किन बूझहु-अनुसरि ।
(क) ,,—हे सखि ! हे मृग-बधू, इन्हैं पूछौ किन अनुसरि ।
(ग) ६—इनके डह डहे-नैंन, अबै देखे हैं कहुँ हरि ॥
(रा०) ,,—डह-डह इनके नैंन, अबहीं कतहूँ चितए हरि ॥

[१]अहो पवन ! सुभ-गमन, सुगँध [२]सँग थिर जु रही चलि ।
[३]दुःख-दवन, सुख-भवन, रवन, कहुँ नैं चितए बलि ॥१३॥❀

[४]अहो चंपक वरु कुसुम ! तुमहिं छवि सब सौं न्यारी ।
[५]नैंकु बतावहु अहो ! जहाँ हरि कुंज-बिहारी ॥१४॥†

[६]अहो अंब ! अहो निंब ! कदंब ! क्यौं रहे मौंन गहि ।
[७]अहो उतंग वट ! तुंग वीर ! कहुँ तुम इत-उत लहि ॥१५॥‡

पाठान्तर—

(च) १—अहो सुभग बन सुगँध ! पवन सँग थिर जु रही चलि ।

(छ) २—नैंसुक थिर ह्वै रहि ।

(च) ३—सुख के भवन, दुख-दमन, रमन इत तैं चितए बलि ॥
(छ) „—दुःख-दवन औ रवन, कहूँ इत-उत हैं लहि ॥

❀ उक्त पद (क) और (च) प्रति में नहीं है ।

(ट) ४—अहो चंपक ! अहो कुसुम ! तुमैं सब सौं छवि न्यारी ।

(घ) ५—नैंकु बताइ जु देहु, कहाँ हरि कुंज-बिहारी ॥

† उक्त पद हमारी हस्त लिखित प्रति में नहीं है और साथ ही (क) प्रति में भी नहीं है ।

(क) ६—अहो कदंब ! अहो निंब ! अंब ! कत रहे मौंन गहि ।

(त) ७—अहो उतंग वट ! सुरँग पीय, कहुँ इत उत तुम लहि ॥
(रा०) „—अहो बढतुंग सुरंग बीर ! कहुँ इत उतहे लहि ॥

‡ उक्त पद 'चन्द्रिका' में नहीं है ।

[1]अहो असोक ! हरि-सोक, लोक-मनि पियहि बतावहु ।
अहो पनस ! सुख-सनस, मरति [2]तिय अमिय पियावहु ॥१६॥*

[3]जमुना-तट के बिटप-पूँछि, भई निपट-उदासी ।
[4]क्यौं कहिहैं सखि ! महा-कठिन, तीरथ के बासी ॥१७॥

[5]हे अवनी ! नवनीत-चोर, चित-चोर हमारे ।
[6]राखे कितै दुराइ, बतावहु प्रान-पियारे ॥१८॥

पाठान्तर—

(च) १—हे असोक ! हर सोक लोक-मनि पीया बतावो ।
अहो पनस ! सुभ सरस मरत तिय अमी पियावौ ॥

(रा०) २—तीय सब मरति जियावहु ।

* उक्त पद (क) और (ट) में प्रतियों नहीं हैं ।

(य) ३—जमुन निकट के बिटप, बूझि भई निपट-उदासी ।
कहि है क्यो सखि ! महा-कठिन ए तीरथ-वासी ॥

(च) ४—क्यों कहि हे सखि ! ए महा-कठिन हैं तीरथ वासी ॥

(घ) ५—अहो .।

(च) ६—राखे कतहुँ छिपाइ, कहौ किन प्रान-पियारे ॥
(प) ,,—राखे हैं कित हीँ दुराइ, अहो धौं प्रान पियारे ॥
(च) ,,—राखे कितहुँ छिपाइ, कहौ धौं प्रान हमारे ॥

[1]है तुलसी ! कल्यान, सदाँ गोविंद-पद-प्यारी ।
[2]क्यों न कहो सखि ! नंद-नँदन सौं बिथा हमारी ॥१९॥

[3]जहँ आवत तम-पुंज, कुंज-गहवर तरु-छाँईं ।
[4]अपने मुख-चाँदने, चलतिं सुन्दरि बन-माँईं ॥२०॥

[5]इहि बिधि बन-बन ढूँढ़ि, पूँछि उनमत की नाईं ।
करन लगीं मन-हरन-लाल-लीला-मन-भाईं ॥२१॥

[6]मोहन लाल रसाल हिं, लीला इनहीं सोहैं ।
[7]केवल तनमैं भईं, न जानैं कछु हम को हैं ॥२२॥

पाठान्तर—

(घ) १—अहो...।
(च) २—क्यौं न कहौ तुम, मन-मोंहन सौं, बिथा हमारी ॥
(क) ,,—क्यों न कहति तू, नंद नँदन सौं दसा जु सारी ॥
(ट) ,,—क्यौं न कहैरी ! नंद-सुवन सौं बिथा हमारी ॥
(घ) ३—आवैं जहँ तम-पुंज...।
(य) ,,—जब आइयतु तम-गहन, कुंज-गहवर तरु छाँहीं ।
अप-अप मुख चाँदने, चलीं सुन्दर बन माँहीं ॥
(रा०) ,,—अपने-मुख चाँदने, चलति सुन्दर तिन माँहीं ॥
(य) ५—इहि बिधि बन, घन ढूँढि, बूझि उनमत की नाहीं ।
लगी करन मन-हरन, लाल-लीला बन माहीं ॥
(च) ६—लीला मोंहन लाल, रसाल की इन ही सोहै ।
(ट) ७—तन मैं केवल भईं, कछु न जानैं हम को हैं ॥

[1]हरि की सी सब चलनि, विलोकनि, बोलनि, हेरनि ।
[2]हरि की सी गोधन टेरनि, घेरनि, पट-फेरनि ॥२३॥ᅠ*

[3]हरि की सी बनि आवनि, गावनि अति-रस-रंगी ।
हरि-सम कन्दुक रचनि, नचनि, नव-ललित-त्रिभंगी ॥२४॥

[4]सीदामा बनि भाग, चढ़ति कोऊ कान्हर-कांधें ।
[5]कोउ जसुमति बनि कान्ह, दाम-गहि ऊखल-बांधे ॥२५॥

पाठान्तर—

(ट) १—हरि की चलनि, विलोकनि, हरि की सी हेरनि ।
(प) ,,—चलनि, विलोकनि, हरि की सी त्यों भ्रंवर-फेरनि ।
हरि सी गोधन घेरनि, टेरनि, हरि की सी हेरनि ॥
(त) २—त्यों गायन चारन, घेरनि, सुख-टेरनि खेलनि ॥
* उक्त पदावली से लेकर, "कोउ गिरिवर अंबर को करि, धरि बोलति तब, निरखि दृष्टि तर होहु गोप, गोपी, गोधन, सब ।" ये पाँच—छंद, हमारी और (अ) (क) (य) तीन प्रतियों में नहीं हैं।
(च) ३—हरि सी बन तें आवनि, गावन-संग रस-रंगी ।
त्यौं ही कन्दुक-रचनि, नचनि, गति सरस-त्रिभंगी ॥
(छ) ,,—हरि की सी बनि बनतें आवन, गावन रस-रंगी ।
हरि सी गेन्दुक रचन, नचन, पुनि हैन त्रिभंगी ॥
(ट) ४—कोऊ सिरीदाम ह्वभाम, चढ़ति कान्हर के कांधें ।
(प) ,,—कोउ सिरीदामा होइ...।
(त) ,,—कोउ दामा ह्वै भाम, चढ़ै कान्हर के कांधे ।
(च) ५—जसुमति ह्वै कोउ कान्ह, दाम लै ऊखल बांधें ॥
(न) ,,—जसुमति बनि बलि बाल, लाल-ऊखल सों बांधें ॥

कोउ जमलार्जुन भंजति, गंजति-काली-बल कौं ।
कोउ कहै मूँदहु नैंन, सोच नहिँ दावानल कौ ॥२६॥*

[1]कोउ गिरिवर अम्बर कौं कर-धर बोलति हैं तब ।
निधरक इहिँ तर रहौ, गोप, गोपी, गोधन सब ॥२७॥

[2]भृंगी-भै तैं भृंग होइ, जब[3] कीट-महा-जड़ ।
[4]कृष्ण-प्रेम तैं कृष्ण होइ, [5]तब का अचरज-बड़ ॥२८॥

[6]तब पायौ पिय-पद-सरोज कौ रुचिर-खोज तहँ ।
[7]अग्दिर, अंकुस, कमल, कलस, [8]धुज, जगमगात जहँ ॥२९॥

पाठान्तर—

*उक्त पद "राधाकृष्णदास जी सं० पुस्तक" नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में नहीं हैं ।

[1](क) १—कोउ इक अम्बर कौ गिरिवर कर-धर बोलत तब ।
निडर इहि तर रहौ, गोप, गोपी, गाइन सब ॥

(च) २—भृंगी-भय ते भृंग होत, इकु कीट-महा-जड ।

(क) ३—वह...।

(ग) ,,—ज्यों...।

(ट) ४—कृष्ण प्रेम सौं कृष्ण होइ, यह नहिँ अचरज—बड ॥

(च) ५—कछु अचरज नहिँ बड ॥

(झ) ,,—कृष्ण संगति तैं कृष्ण होंन, कछु नहिँ अचरज बड़ ॥

(य) ६—पायो तब पिय-पद-सरोज कौ, रुचिर-खोज तहँ ।

(अ) ७—अरिदल अंकुस कलस-कमल अति जगमात जहँ ॥

(च) ,,—जव, रद, अंकुस, कुलिस, कमल, धुज जगमात जहँ ॥

(ज) ८—छवि जगमगात जहँ ॥

[1]जो रज सिव, अज खोजत, जोजत जोगी-जन हिय ।
[2]सो रज वंदन करन लगीं, सिर-धरन लगीं तिय ॥३०॥

[3]पुनि निरखि ढिंग जगमगात, पिय-प्यारी के पग ।
[4]चितै परसपर चकित भईं, जुरि चली तिहीं मग ॥३१॥

[5]चकित भईं सब कहति जात, बड़-भागिन को अस ।
[6]परम-कांत एकांत पाइ, पीवति अधरन-रस ॥३२॥※

पाठान्तर—

(अ) १—जो रज अज, सिव, कमला, ढूंढति जोगी-जन हिय ।
(रा०) ,,—जो रज सिव, अज, कमला खोजत जोगी-जन हिय ।

(ट) २—सो रज बंदन करति, धरति सिर बार-बार तिय ॥
(रा०) ,,—तें सब वदन करन लगीं, सिर धरन लगीं तिय ॥ १

(अ) ३—पुनि पेखे अति-जगमगात, ढिंग प्यारी के पग ।
(च) ,,—तब देखे ढिंग जगमगात, प्यारी-तिय के पग ।
(रा०) ,,—देखे ढिंग जगमगत, तहाँ प्यारी—तिय के पग ।

(अ) ४—चकित भईं सब चितै, परसपर चली तिही मग ॥

(क) ५—चकित चितै सब कहें कौन यह बड़-भागिन अस ।
(छ) ,,—चकित भईं सब कहति, कौन यह बड़ भागिन-अस ।

(क) ६—परम-कांत एकांत लाइ, पीवति जु अधर-रस ॥
(छ) ,,—परम-कंत एकांत पाय, पीवत जु अधर-रस ।'

※ उक्त पद (अ) और (प) दो प्रतियों में नहीं हैं ।

[1]आगैं चलि अविलोकी, इक नव-पल्लव-सैंनी।
[2]जहँ पिय निज कर कुसुम, सुसुम लै गूँथी बैंनी ॥३३॥

[3]तहँ पायौ इक मंजु-मुकर, मनि-जटित विलोलै।
तिहिँ पूँछति ब्रज-बाल, बिरह-बस[4] सोऊ न बोलै ॥३४॥

[5]तरक करें आपुस मैं, कहौ इहि क्यौं कर लीन्हौं ?।
[6]तिन मधि हिय की जानि, कोऊ यह उत्तर दीन्हौं ॥३५॥

पाठान्तर—

(ड) १—चलि आगैं अविलोकी, नव-नव पल्लव सैनी।
(रा०) ,,—आगैं चलि पुनि अवलोकी, नव-पल्लव सैंनी।
जहँ पिय कुसुम, सुसुम हाथ लै गूँथी बेनी॥

(रा०) २—जहँ पिय कुसुम, सुसुम लै सुकर गुही है बैंनी॥
(त) ,,—जहाँ कुसुम लै हाथ पिया, रचि गूँथी बेनी॥

(ट) ३—पायौ तब इक मुकर-मंजु, मनि जड़ित बिलोलै।
पूँछति तिहि ब्रज-बाल, बिरह सौं सोऊ न बोलै॥

(ट) ४—भरि ।

(च ५—करति तरक आपस मैं, कहौ कर यह क्यौं लीनौं ?।
(रा०) ,,—तर्क करत अपमाहिँ, अहो यह क्यौं कर लीन्हौं ?।
(प) ,,— करें तरक ब्रज-बाल, अहो यह कर क्यौं लीनौं ?।
तिन मैं कोऊ तिनके हित की, नाहिँ उत्तर दीनौं॥

(च) ६—तिन मैं कोउ तिनके हित की, जिन उत्तर दीनौं॥
(क) ,,—तिन मधि तिन के हिय की, जानि इक उत्तर दीनौं॥
(रा०) ,,—तिन मैं तिनके हिय की जानि, उन उत्तर दीन्हौं॥

[1]बैंनी-गूंथत-समैं, छैल पाछैं बैठे जब ।
[2]सुन्दर-बदन विलोकन-सुख कौ अंत भयौ तब ॥३६॥

[3]तातैं मंजुल-मुकर, मुकर लै बाल दिखायौ ।
स्री मुख कौ प्रतिबिंब सखी ! तब सनमुख आयौ ॥३७॥

[4]धन्न कहति भई ताहि, नाहिं कछु मन मैं कोपीं ।
निरमतसर जे संत, तिननि चूरामनि—गोपीं ॥३८॥

[5]इन नींके आराधे, हरि-ईस्वर-बर जोई ।
[6]तातैं अधर-सुधा रस, निधरक पीवति सोई ॥३९॥

पाठान्तर—

(अ) १—गूंथत बैंनी समैं, लाल, बैठे पाछैं जब ।
(च) ,,—पहिलेसु गूंथति समैं, लाल पाछैं बैठे जब ।
(रा०) ,,—बेनी गूहन समय, छबीलौ पाछैं बैठौ जब ।
(च) २—बदन विलोकत सुन्दर सुख कौ, भयौ अंत तब ॥
(रा०) ,,—सुन्दर बदन विलोकनि, पिय के अन्तस भयौ तब ॥
(अ) ३—मंजुल-मुकर मुकर लै, तातैं बाल दिखायौ ।
सखि ! श्रीमुख-प्रतिबिंब, तबै उन सनमुख आयौ ॥
(अ) ४—कहित धन्य भई ताहि कछू मन नाहिंन कोपी ।
निरमतसर-सतन कौ हैं, चूरामनि-गोपी ॥
(प) ५—नीकैं उन आराधे, ईस्वर-बर हरि जोई ।
निधरकि तातैं अधर-सुधा-रस पीवति सोई ॥
(द) ६—तातैं अधरामृत निधरकि, अति पीवति सोई ॥
(त) ,,—तातैं अधरामृत अति निधरकि, पीवति सोई ॥
(रा०) ,,—तातैं निधरक अधर-सुधारस, पीवत सोई ॥

सोऊ पुनि अभिमान-भरी, यौं कहनि लागी तिय।
मो पैं चल्यौ न जाइ, जहाँ तुम चलन चँहत पिय ॥४०॥

[1]पुनि आगैं चलि तनिक-दूरि, देखी सोई ठाढ़ी।
[2]जासौं सुन्दर-नंद-कुँवर-पिय, अति-रति बाढ़ी ॥४१॥

[3]गोरे-तन की जोति, छूटि छबि छाइ रही धर।
[4]मानौं ठाढ़ी सुभग-कुँवरि, कंचन-अवनी पर ॥४२॥

[5]घन मैं बिछुरि बीजुरी, जनु मानिनि-तनु काछैं।
किधौं चंद सौं रूसि, चन्द्रिका रहि गई पाछैं ॥४३॥

पाठान्तर—

(क) १—आगैं चलि पुनि नैंकु-दूरि, देखी सोई ठाढ़ी।
सुन्दर-नंद-कुँवर-पिय की, जासौं रति बाढ़ी ॥

(ख) २—जासौं-नंद-सुवन-वर-पिय की, अति-रति बाढ़ी ॥
(ग) ,,—जासौं सुन्दर-नंद-सुवन-पी, अति-रति बाढ़ी ॥

(अ) ३—तन-गोरे तैं ज्योति, छूटि छबि छाइ रही यौं।
ठाढ़ी मानौं सुभग-कुँवरि, कंचन-अवनी त्यौं ॥

(प) ४—मानौं कुँवरि-सुभग ठाढ़ी, अवनी-कंचन त्यौं ॥
(रा०) ,,—मानौ ठाडी कुँवरि, सुभग-कंचन-अवनी पर ॥

(प) ५—जनु घन तैं बिछुरी बिज्जुरी, मानिन-तुम-काछैं।
(रा०) ,,—घन तै जनु बिजुरी-बिछुरी, मानिन-तनु काछैं।
(ट) ,,—बिछुरि बीजुरी जनु घन सैं, नूतन-छबि काछैं।

[1]नैंननि तें जलधार, हार-धोवति धरि-धावति।
भँवर उड़ाइ नहिं सकति, वास बस मुख-ढिंग आवति ॥४४॥

कासि-कासि पिय-महाबाहु, यों वदति अकेली।
[2]महा-विरह की धुनि सुनि, रोवत खग, मृग, बेली ॥४५॥

ता सुन्दरी की दसा, देखि कछु कहति न आवै।
[3]विरह-भरी-पूतरी होइ तौ, कछु छवि पावै ॥४६॥*

[4]धाइ भुजन भरि लई, सबन लै-लै उर लाई।
मनों महा-निधि खोइ, मध्य[5] आधी-निधि पाई ॥४७॥

पाठान्तर—

(अ) १—नैंननि के जल हार, हियों, धोवति धरि धावति।
(प) ,,—नैंननि ते जलधार, बहति अविरल अति धावति।
भँवर उड़ाइ न सकति, वास बस जे ढिंग आवति॥
(अ) २—विरह-भरी की धुनि, सुनि रोवति खग, द्रुम, वेली॥
(च) ३—विरह-भरी पुतरी जु होइ, त्यौं असि छवि पावैं॥

* उक्त पद (ऋ) और (ट) प्रति में भी नहीं हैं। तथा राधाकृष्ण दासजी संपादित प्रति में भी नहीं हैं।

(ट) ४—भुजन धाइ भरि लई, सबनि उर लै-लै लाई।
(रा०) ,,—दौरि भुजन भरि लई, सबन लै-लै उर लाई।
(ह) ५—बीच...।
(रा०),,—मुग्र...।

[1]कोउ चुंवति मुख-कमल, कोऊ भ्रू, भाल, सु अलकैं।
जामैं पिय-संगम के सुन्दर, स्रम-कन झलकैं ॥४८॥❀
[2]पोंछति अपने अंचल, रुचिर-दृगंचल तिय[3] के।
[4]पीक-भरे सुकपोल, लोल-रद-छद जहँ पिय[5] के ॥४९॥†
[6]तिहि लै तहँ तें अहुरि-बहुरि, जमना-तट आई।
[7]नँद-नंदन जग-वंदन पिय जहँ, लाड़-लड़ाई ॥५०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशम-स्कन्धे रास क्रीड़ायां 'गोपी विश्लेष' वर्णनो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥❀

पाठान्तर—

(स) १ – चुंवति कोउ मुख-कमल, कोऊ जु सुधारति अलकैं।
(अ) ,,—चूमति कोऊ मुख-कमल, कोऊ भुज, भाल, सु अलकैं।
तामैं सुन्दर-स्याम की मंजुल-स्रम-कन झलकैं॥
❀ उक्त पद्य (क) प्रति में नहीं हैं।
(च) २—अपने अंचल, रुचिर-दृगंचल, पोंछति तिय के।
(छ) ३—ती के।
(च) ४—पीक-भरे सु कपोल, लोल-रद नख-छत पिय के॥
(छ) ५—पी के।
† इससे पूर्व का पद और उक्त पद (क) और (ट) प्रतियों में नहीं हैं।
(प) ६—लै तहँ तें तिहि अहो! बहुरि तट-जमना आई।
(रा०) ,,—जित-तित तैं सब अहुरि, बहुरि-जमुना-तट आई।
(प) ७—नँद-नदन मन मोहन-पिय, जहँ लाड़ि लड़ाई॥
(रा०) ,,—जहँ नँद-नंदन जग-बंदन-पिय, लाड़ लड़ाई॥
❀मूल भागवत में उक्त अध्याय का "कृष्णान्वेषण" नाम लिखा है।

तृतीय-अध्याय

[1]कहनि लगीं अहो कुँवर-कान्ह! प्रगटे व्रज जब तैं।
[2]अवधि-भूत-इन्दिरा-अलंकृत ह्वै रही तब तैं॥१॥

[3]अति सै-सुख-सरसावत, ससि ज्यौं बढ़त बिहारी।
पुनि-पुनि प्यारे! गोप-बधू प्रिय निपट तिहारी॥२॥*

[4]नैंन-मूँदिवौ महा अस्त्र लै हाँसी-फाँसी।
कित मारत हौ सुरतनाथ! बिनु-मोल की दासी॥३॥

पाठान्तर—

(ख) १—लगीं कहनि यौं कान्ह-कुँवर, व्रज प्रगटे जब तैं।
(रा०) २—अवधि-भूत इन्द्रादि इहाँ क्रीड़त हैं तब तैं॥

(ख) ३—सब कौं सुख बरसावत, ससि ज्यौं बढ़ति इकारी।
(रा०) ,,—सब कौं सब-सुख बरसत, सरसत बड़-हितकारी।
तिन मैं पुनि ए-गोप-बधू प्रिय निघूद तिहारी॥

* उक्त पद (क) प्रति मे नहीं हैं।

(ट) ४—महा-अस्त्र लै नैंन-मूंदिवौ, हाँसी की फाँसी।
मारत हौ क्यौं (कत) सुरतनाथ, बिनु-मोलहि दासी॥

[1]विष तें, जल तें, व्याल-अनल तें, दामिनि-झर तें ।
क्यौं राखी ! नहिं मरन दई ! नागर-नग-धर तें ॥४॥

[2]जनु जसुधा तें प्रगट भए, पिय ! अति इतराने ।
बिस्व-कुसल-कारन बिधना, [3]बिनती-करि आने ॥५॥

[4]अहो मित्र ! अहो प्रान-नाथ ! इहि अचरज-भारी ।
अपने जन कौं मारि, करहु का की रखवारी ॥६॥

जब पसु-चारन चलत, चरन-कोमल-धरि बन में ।
[5]सिल, तृन, कंटक अटकत, कसकत हमरे-मन में ॥७॥

पाठान्तर—

(अ) १—विष-जल तैं औ व्याल-अनल पुनि दामिनि-झर त ।
(रा०) ,,—बिष-जल ते, व्याल तैं, अनल तैं, चपला-झर तैं ।
राखी क्यौं ! मरन दई नहिं, नगधर-नागर तैं ॥

(अ) २—जब तैं जसुधा-सुवन भए, तब तैं इतराने ।
(च) ,,—जनु तुम जसुधा-सुत न भए पिय अति-इतराने ॥
(ट) ,,—जसुधा सुत जनु तुम न भए पिय बहु इतराने ।
बिस्व-कुसल के काज, अहो बिनती करि आने ॥

(च) ३—विधि न विनती कै आने ॥

(रा०) ४—अहो मीत ! अहो प्राननाथ ! यह अचरज-भारी ।
अपननि जो मारि हौ, करि हौ काकी रखवारी ॥

(रा०) ५—सिल तिन कंटक, अटक, कारक हमरे मन में ॥

प्रनत-मनोरथ करन, चरन सरसीरुह [1]पिय के ।
[2]का घटि जैहैं नाथ ! हरत दुख हमरे-जिय के ॥८॥

[3]कहाँ हमारी प्रीति, कहाँ पिय ! तुव निठुराई ।
[4]मनि पखान सों खचै, दई तें कछु न बस्याई ॥९॥

[5]जब तुम कानन जात, सहस-जुग-सम बीतत छिनु ।
दिन बीतत जिहि-भाँति, हमहिँ जानत पिय तुम-बिनु ॥१०॥

[6]पुनि कानन तें आवत, सुन्दर-आनन देखैं ।
[7]तहँ बिधना अति-क्रूर, करी पिय ! नैन-निमेखैं ॥११॥

पाठान्तर—
(भ) १—पी के ।
(प) २—जैहै कहा घटि नाथ ! हरत दुख हमरे-हिय के ॥
(रा०) ,,—बचक रंचक काहि न हरिये दुख या ही के ॥
(च) ३—प्रीति हमारी कहाँ, कहाँ तुमरी निठुराई ।
मनि पखान तै खचे, कछु ना दईय बसाई ॥
(रा०) ४—मनि-पखान सौं छैकि दई मौं कछु न बसाई ॥
(ट) ५—कानन तुम जब जात, सहस-जुग बितति छिनु-छिनु ।
(रा०) ,,—जब पुनि कानन जात, सात-जुग सम बीतत छिनु ।
बितनि दिन जिहि भाँति हमी जानति पिय तुम बिनु ॥
(अ) ६—जब कानन सौं आवत, आनन-सुंदर देखैं ।
(रा०) ,,—जब पुनि बिपिन तैं आवत, सुन्दर-आनन देखैं ।
(प) ,,—जो कैसें हूँ साँझ समै, मोहन-मुख देखैं ।
(अ) ७—तहँ यह बिधिना-क्रूर, करि धरी नैन निमेखैं ॥
(क) ,,—तौ ए बिधिना-क्रूर, करी अति नैन-निमेखैं ॥
(रा०) ,,—तब इम बिधिना-क्रूर, रची ले नैन निमेखैं ॥

बुध-जन-मन-हरनी-बानी-बिनु, जरति सबै तिय ।
[1]अधर-सुधा-आसव तनकै, प्यावहु ज्यावहु पिय ॥१२॥❀

[2]जदपि तिहारी-कथा, अमृत-सम ताप-सिरावै ।
अमर-अमृत कौं तुच्छ करै, ब्रह्मादिक गावै ॥१३॥†

जिन यह प्रेम-सुधाधर-तुम्हरौ-मुख निरख्यौ पिय ।
तिन की जरन नहिँ मिटी, रसिक-संविद कोविद-हिय ॥१४॥‡
संतत-भै तें अभै-करन, कर-कमल तिहारौ ।
का घटि जैहै नाथ ! तनक सिर छुवत हमारौ ॥१५॥§

पाठान्तर—

(च) १—अधर-सुधासव सहित, तनक प्यावहु ज्यावहु जिय ॥

❀ उक्त पद (अ) (क) (ट) और नागरी प्रचारिणी वाली प्रतियों में नहीं हैं ।

(अ) २—यह तुमरी अहो कथा, अमृत सी ताप सिरावै ।
अमरामर कौं तुच्छ करै, सब ताप नसावै ॥

† उक्त पद (क) (च) (प) (ट) (त) पाँच-प्रतियों में नहीं हैं और न नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में है ।

‡ उक्त पद (क) (य) प्रतियों में नहीं हैं, नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में भी नहीं हैं ।

§उक्त पद और "प्रनत मनोरथ करन चरन सरसीरुह पिय के, का घटि जैहै नाथ ! हरत दुख हमरे जिय के" की अन्तिम-पदावली कुछ-कुछ एक सी है व तीन प्रतियों, अर्थात् (क) (प) (य) में उक्तपद है भी नहीं परन्तु विशेष प्रतियों में लिखा होने के कारण हमें इसका उल्लेख करना पड़ा । नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में भी नहीं है ।

अजहूं नाहिँ न कछु बिगर्‌यौ, रंचक पिय आवौ।
मुरली कौ जूठौ अधरामृत, आइ पियावौ ॥१६॥७

[1]फनी-फनन पैं अरपे डरपे, नेंकु नाहिँ तब।
छतियनु पैं पग धरत, डरत कित कुँवर-कान्ह अब ॥१७॥

[2]जानति हैं हम, तुम जो डरत ब्रजराज—दुलारे।
कोमल-चरन-सरोज, उरोज कठोर हमारे ॥१८॥

[3]सनैं-सनैं पग धरिय, हमैं पिय निपट-पियारे।
[4]कित अटवी महँ अटत, गड़त तृन कूर्प—अन्यारे ॥१९॥

पाठान्तर—

(क) १—फनी-फनन पर डरपे अरपे, नाहिँन नैंकु तब।
छतियन-ऊतिन पग धरत, डरत क्यौं कान्ह-कुँवर अब।

(च) २—जानत हैं हम कुँवर-कान्ह! ब्रजराज-दुलारे।
(छ) ,,—हम समुझी यह तुम जु डरत-ब्रजराज-दुलारे।
(अ) ३—सनै-सनै धरिपे पिय! हमकौं अधिक पियारे।
(च) ,,—हरैं-हरैं पग धरिये, हमैं पु अति ही पियारे।
(छ) ,,—हरैं-हरैं धरि पीय, हमहिँ लौ प्रान—पियारे।
(च) ४—कित अवनी में अटकत, अंकुर-कंकर न्यारे॥
(प) ,,—किस अटवी महिं अटत, गड़त तृन कुस अनियारे॥
(ट) ,,—हा! अटवी मैं अटत, गड़त तृन कुलिस अन्यारे॥
(त) ,,—कत अटवी महिँ अटत, गड़त तृन कूट न न्यारे॥

जदपि परम-सुख-धाम, स्याम-पिय कौ लीला-रस ।
तदपि तिनहिँ अवलोकन-बिनु, अकुलाइ गईं अस ॥२०॥*

ज्यों चंदन, चंद्रमा, तपन तें सीतल करहीं ।
पिय-बिरही जे लोग, तिनहिँ लगि आग बितरहीं ॥२१॥†

छिन बैठत, छिन उठत, सुलोटत अति रज माहीं ।
थोरे-जल ज्यों दीन-मीन, आतुर अकुलाहीं ॥२२॥‡

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे रास क्रीड़ायां
"गोपिका-गीत उपालम्भोभवरलान नाम तृतीयोऽध्याय ।§

—:०:—

---

* उक्त पद्य (क) प्रति और नागरी-प्रचारिणी वाली प्रति में नहीं है।

† उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में नहीं है।

‡ "जदपि परम सुख धाम स्याम-पिय कौ लीला-रस" से लेकर और उक्त छंद तक की पदावली छपी हुई प्रतियों में (च) (प) (ट) में ही मिलती है, अन्यत्र नहीं। नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में भी नहीं है।

§ मूल भागवत में इस अध्याय का नाम "गोपी गीत" लिखा है और नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में "गोपिका गीत उपालम्भ-वर्णन" नाम लिखा है।

चतुर्थ अध्याय

[1]इहिं बिधि प्रेम-सुधा-निधि, बढ़ गईं अधिक-कलोलें।
[2]बिह्वल ह्वै गईं बाल, लाल सों अलबल-बोलें ॥१॥

[3]तब तिनहीं में प्रगट भए, नँद-नंदन-पिय यों।
[4]दृष्टि-बंध करि दूरैं, बहुरि प्रगटैं नट-बर ज्यों ॥२॥

[5]पीत-बसन-बनमाल धरें, (लए) मंजुल-मुरली हत्थ।
मंद-मंद मुसिकात, निपट मनमथ के मन-मथ ॥३॥

पाठान्तर—

(क) १—बढ़ि गईं प्रेम सुधा निधि में कछु अधिक कलोलें।
(च) „—इहि बिधि प्रेम-सुधानिधि मधि बढ़ि गईं अधिक कलोलैं।
(रा०), —यह बिधि प्रेम सुधा निधि में अति-बढ़ी कलोलें।
(च) २—ह्वै गईं बिह्वल (बिह्वल) बाल, लाल सों अलबल बोलें ॥
(अ) ३—तिनहीं में तब प्रगट भए, नागर नागर यों।
(रा०) „—तब तिनहीं में, तें निकसे नँद नंदन पिय यों।
(अ) ४—बंद-दृष्टि करि दूरैं, बहुरि प्रगट नटबर ज्यों ॥
(रा०) „—दृष्टि बंध के दूरै, बहुरि प्रगटे नटवर ज्यों ॥
(रा०)५—पीत बसन बनमाल बनी मंजुल-मुरली हत्थ।
मँद मधुर तर हँसत, निपट मनमथ के मनमथ ॥

[1]पियहिँ निरखि तिय-वृन्द, उठे सब एकु बेर यों।
[2]फिरि आए घट प्रान, बहुरि जागति इन्द्री ज्यौं ॥४॥
[3]महा-छुधित कौ भोजन तें ज्यौं प्रीति सुनीं है।
ताहू तें सत-गुनी, सहस कै कोट–गुनी है ॥५॥
[4]दौरि लिपटि गईं ललित-लाल, सुख कहत न आवै।
मीन उछरि ज्यौं पुलिन परे पै पानी पावै ॥६॥*

पाठान्तर—

(च) १—देखि पिया प्रिय-वृन्द उठे, तब एकु बेर यों।
(रा०) ,,—पियहिँ निरखि तिय वृन्द उठीं सब इकै बार यों।
(च) २—आए पुनि घट प्रान, बहुरि उझकति इन्द्री ज्यौं॥
(रा०) ,,—परिघट आए प्रान, बहुरि उझकत इन्द्री ज्यौं॥
(प) ३—भोजन सों ज्यौ महा छुधित की, प्रीति सुनी है।
ताते हू सत गुनी, सहस औ कोटि—गुनी है॥
(पा) ,—महा छुधित को जैसैं असन सौं प्रीति सुनी हैं।
ताहूतैं सतगुनी सहस पुनि कोटि गुनी है॥
(च) ४—लिपटि गईं पुनि ललित लाल, छवि कहति न आवै।
मीन उछरिकैं पुलिन परै, पुनि पानी पावै॥

यद्यपि उक्त छंद (अ) (प) (त) प्रतियों में ही मिलता है जैसा कि पहिले लिखा गया है, अतः यहां हमने उद्धृत किये बग़ैर कथानक का सिल-सिला ठीक नहीं बैठता इसलिये इसे उद्धृत करना पड़ा। नागरी प्रचारिणी द्वारा प्रकाशित प्रति में उक्त पद पूर्व पद से आगे है और इसका पाठान्तर निम्न प्रकार है। यथा—

दौरि लपटि गईं ललित-पिय हिँ कहत न बनि आवहि।
मीन उछरि जल परहिँ पुलहिँ पुनि पानी पावहि॥

[1]कोऊ चटपट झपटि जाइ, उर-वर सौं लपटी ।
[2]कोउ गर-लपटी कहति, भलें जू कान्हर कपटी ॥७॥

[3]कोउ नागर-नगधर की गहि रही दोउ-कर पटकी ।
ज्यौं नव-घन तें सटकि दामिनी, दाँमन अटकी ॥८॥

[4]कोऊ पिय-भुज लटकि, मटकि रही नारि-नवेली ।
[5]जनु सुन्दर-सिंगार-विटप, लपटी छवि—बेली ॥९॥*

पाठान्तर—

(क) १—कोऊ चटपट सौं कर लपटी, कोऊ उरवर मौं लपटी ।
(प) ,,—कोऊ करसौं लपटी धाइ, कोऊ उर सौं लपटी ।

(रा०) ,,—कोउ चटपटि उर लपटी, कोउ करवर लपटी ।
गर सौं कोऊ लपटी कहति, तुम कान्हर कपटी ॥
(रा०) २—कोउ गरैं लपटी कहति.भलैं-भलैं कान्हर-कपटी ॥

(ना. प्र) ३—कोउ नगधर-वर-पिय को, गहि-गहि परिकर पटकी ।
जनु नव-घन तें सटकि, दामिनी घटा में अटकी ॥

(क) ४—कोउ पिय-भुज सौं मटकि, लटकि रही नारि-नवेली ।
(रा०) ,,—कोउ पिय-भुज लिपटाय, रही नव-नारि नवेली ।

(क) ५—जनु लपटी-सिंगार विटप, सुन्दर-छवि बेली ॥

* उक्त पद्य (अ) प्रति में नहीं है ।

[1]कोउ कोमल पद-कमल, कुचन पें राखि रही यौं।
[2]परम-कृपन-धन-पाइ, हिऐ सौं लाइ रहत त्यौं(ज्यौं)॥१०॥*

[3]कोऊ पिय कौ रूप, नैंन-मग उर-धरि ध्यावत।
[4]मधु-माँखी ज्यौं देखि, दसौं-दिसि अति-छवि पावत॥११॥ †

[5]कोउ दसनन दै अधर-बिंब, गोविन्दहिँ ताड़ति।
[6]कोउ इक नैंन-चकोर, चारु-मुख-चंद निहारति॥१२॥ ‡

पाठान्तर—

(च) १—कोउ पद्-कमल-कुचन-कोमल बिच राखि रही यौं।

(रा०) ,—कोउ कमल-पद्-कमल-कुचन-बिच राखि रही यौं।

(च) २—निधन परम धन पाइ, हिए सौं लाइ रहति ज्यौं॥

*उक्त पद्य (क) प्रति में नहीं है।

(अ) ३—पिय कौ कोऊ रूप नैंन-भरि, उरपरि ध्यावत।

(रा०) ,,—कोउ पिय-रूप नयन भरि उर मैं, धरि-धरि धावति।

(अ) ४—मधुर, मिष्ट ज्यौं दृष्टि दसौं दिसि अति-छवि छावत॥

(रा०) ,,—मधु-माँखी लौं डोठि दुहूँ दिसि, अति-छवि पावत॥

†उक्त पद्य (क) प्रति में नहीं है।

(अ) ५—दसन दाबि कोउ अधर-बिम्ब, गोविंदहि ताडत।

(रा०) ,,—कोउ दसननि दलिअधर-बिम्ब, गोविंदहिँ ताडत।

(अ) ६—करि कोउ नैंन-चकोर लाल-मुख-चंद निहारति॥

(रा०) ,,—कोउ एक चारु-चकोर चखनि मुख-चन्द निहारति॥

‡उक्त पद्य (क) और (ट) प्रति में नहीं है।

[1]कहुँ काजर, कहुँ कुंमकुंम, कहुँ इक पीक-लीक वर।
अस राजत ब्रजराज-कुँवर, कन्दर्प-दर्प हर ॥१३॥

[2]बैठे सब पुनि पुलिन, परम-आनंद भयौ है।
[3]छबिलिन अपनौं छादन, छबि सौं छाइ दयौ है ॥१४॥

[4]एक-एक हरि-देव, सबन के आसन वैसे।
किए मनोरथ पूरन, जिनके उपजे जैसे ॥१५॥*

[5]ज्यौं अनेक जोगेसुर, जिय में ध्यान धरत हैं।
एक बेर ही एक-रूप है, सुख वितरत हैं ॥१६॥†

पाठान्तर—

(रा०) १—कहुँ काजल, कहुँ कुमकुम, कहुँ कहुँ-पीक लीक वर।
नहँ राजत नँद-नंद कन्द, कंदर्प दर्प हर॥

(क) २—बैठ जाइ पुलिन पै, परम-अनंद भयौ है।

(ख) ,,—बैठे पुनि उहिं पुलिन परम-आनन्द भए हैं।

(रा०) ३—छबिली अपने छादन छवि सो बिछाइ दए हैं॥

(अ) ४—एक-एक हरिदेवा सबहिं आसन पै बैसे।
पूरन किए मनोरथ जाके उपजे जैसे॥

*उक्त पद राधाकृष्णदास संपादित प्रति में नहीं है।

(प) ५—जो अनेक जोगीश्वर, हिय मैं ध्यान धरत है।
एकहिं बेर रूप इक सब कौं सुख बितरत हैं॥

†उक्त पद राधाकृष्णदास जी संपादित प्रति में नहीं है।

जोगी-जन वन जाइ, जतन करि कोटि-जनम पचि ।
[1]अति-निरमल करि राखत, हिय में आसन रचि-रचि ॥१७॥*
[2]तौऊ तहँ नहिँ जात, नवल-नागर-सुन्दर-हरि ।
[3]ब्रज-जुवतिन के सो अंबर बैठे अति-रुचि करि ॥१८॥†
[4]कोटि-कोटि ब्रह्मांड, जदपि एकहिँ ठकुराई ।
पै ब्रज-देविन-सभा, साँवरे अति-छवि पाई ॥१९॥
[5]ज्यों नव-दल-मंडल में, कमल-करनिका भ्राजै ।
[6]त्यों सब सुन्दरि-सनमुख, सुन्दर-स्याम विराजैं ॥२०॥

पाठान्तर—

(रा०) १—अति निरमल करि-करि राखत रुचि हिय रुचि आसन रुचि ।

*उक्त पद्य (क) प्रति में नहीं है ।

(च) २—कछु-छिन हूँ नहिँ जात, तहाँ नागर-सुन्दर हरि ।

(रा०) ,,—कछु छिनास तहँ जात नवल नागर मोहन हरि ।

(च) ३—ब्रज-जुवतिन के अंबर बैठे, सो अति-रुचि करि ॥

(रा०) ,,—ब्रज की तियन के अम्बर पर बैठे अति रुचि करि ॥

† "जोगी-जन वन जाइ, जतन करि कोटि-जनम पचि" से लेकर "तौऊ तहँ नहिँ जात नवल-नागर सुन्दर-हरि' ये दोनों छंद (क) (च) (प) तीन प्रतियों में नहीं है ।

(क) (ट) ४—कोट-कोट ब्रह्माड थाँह इकलौ ठकुराई ।
ब्रज-देविन की सभा, साँमरे अति-छवि पाई ॥

(क) ५—सब सुन्दरि के सन्मुख, यौ अति स्याम बिराजै ।
ज्यौं मंडल-नव-दल मे, कमल करनका भ्राजै ॥

(ख) ,,—ज्यौं नव दलनि कमल मण्डलहिँ कर्णिका भ्राजै ।

(रा०) ६—त्यौं सब गोपिन सनमुख, सुन्दर-स्याम विराजै ॥

[१]बूझनि लगीं नवल-बाल, नँदलाल-पियहिँ तव ।
प्रीति-रीति की बात, मनहिँ मुसिकाति जाति सव ॥२१॥

गोपी प्रश्न

[२]इक भज ते कौं भजैं, एक बिनु-भजते भज हीं ।
[३]कहौ कृष्ण ! वे कौन आहिँ, जो दोउन तज हीं ॥२२॥

कवि कथन

[४]जदपि जगत-गुरु नागर, नगधर, नंद-दुलारे ।
[५]ते गोपिन के प्रेम-विवस, अपनेइ-मुख हारे ॥२३॥

पाठान्तर—

(क) १—पूछनि लगीं नवल-बाल, नँदलाल-पिया तब ।
(रा०) ,,—बूझनि लगि ब्रज-जुवति जुगति ही जुगति पियहिँ तब ॥
(च) २—इक भजनें कौं भजै, भजै विनु एकु जु भजहीं ।
(रा०) ,,—इक भजतनिकौं भजैँ, एक अन भजतनि भजहीँ ।
(च) ३—कान्ह ! कहौ ते कवन अहैं जे दोऊ तजहीं ॥
(रा०) ,,—कहो कान्ह तें कवन आहिँ, जे दुहुअनि तजहीं ॥
(रा०) ४—जदपि जगत-गुरु नागर, जसुमति-नन्द दुलारे ।
(प) ५—तदपि गोपियन प्रेम-विवस, अपने मुख हारे ॥
(च) ,,—गोपिन के ह्वै प्रेम, विवसि, मुख अपने हारे ॥
(रा०) ,,—पै गुपियन के प्रेम अप्र, अपने मुख हारे ॥

भगवान का उत्तर

[1]तब बोले ब्रजराज-कुँवर, हौं रिनी तिहारौ ।
अपने-मन तैं दूरी करौ, किनि दोष हमारौ ॥२४॥

[2]कोटि-कलप लगि तुम प्रति, हौं उपकार करौं जौ ।
हे मनहरनी–तरुनी ! उरिनी नाहिँ होउँ तौ ॥२५॥

सकल-बिस्व अप-वस करि, मो-माया सोहति है ।
[3]प्रेम-मई तुम्हरी माया, मो-मन मोहति है ॥२६॥*

पाठान्तर—

(प) १—बोले तब ब्रजराज-राज हौं ऋनी तिहारौ ।
मन-अपने तैं करौ दूरि सब-दोष हमारौ ॥

(रा०) ,,—तब बोले पिय नव किसोर हम ऋनी तिहारे।
अपने हिय तें दूरि करौ सब दोष हमारे ॥

(द) २—कलप-कोटि लौं हौं तुम प्रति-प्रति-उपकार करौं जो ।
हे तुरुनी-मनहरनी उरिनी होउँ नाहिँ तौं ॥

(रा०) ,,—कोटि कलप लगि तुम प्रति प्रति-उपकार करौं जौ ।
हे मनहरनी, तरुनी, उऋन न होउँ तबौं तौ ॥

(रा०) ३—मोह-मई तुम्हरी माया सोइ, मोहि मोहति है ॥

[1]तुम जु करी सो कोउ न करै, सुनि नवल-किसोरी ! ।
[2]लोक-बेद की सुदृढ़-सृंखला, तृन-सम तोरी ॥२७॥

इति श्री मद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे रास-क्रीड़ायां
गोपी-विरह-तापोपशमनोनाम चतुर्थोऽध्यायः ।*

पाठान्तर—

(क) १—तुम जो करी सो न करै कोऊ अहो नवल-किसोरी !
(रा०) „—तुम जुकरी सो कोउ न करी है नवल किसोरी ? ।
(क) २—लोक, बेद की सुदृढ़-साँकरी, तृन ज्यौं तोरी ॥

* श्रीमद्भागवत में उक्त अध्याय का नाम "गोपी-सान्त्वनम्" लिखा है ।

पंचम अध्याय

[१]पिय के सुनि रस-वचन, क्रोध सब छाँड़ि दयौ है।
[२]विहँसि-विहँसि निज-कंठन, लाल लगाइ लयौ है ॥ १ ॥

[३]कोटि-कलप लगि बसत, लसत पद-पंकज छाँहीं।
कामधेन पुनि कोटि-कोटि, बिलुठति रज-माँहीं ॥२॥*

[४]सो पिय भए अनुकूल, तूल कोउ नाहिं रह्यौ तब।
[५]त्रिविधि-सुखन कौ मूल, सूल उनमूल किए सब ॥ ३ ॥

पाठान्तर—

(अ) १—सुनि पिय के रस बचन, सबन रिपि छाँड़ि दयो है।
(रा०) ,,—सुनि प्रिय के रस-वचन, सबनि रिसि छाड़ि दए है।
(अ) २—विहँसति अपने-कठन, लाल लगाय लयो है॥
(रा०) ,,—विहँसि आपने उर सों, लाल लगाइ लए हैं॥
(अ) ३—कलप कोट लौं बसति, लसति पंकज-पद छाँहीं।
(रा०) ,,—कोटि कल्पतरु लसत, बसत पद-पंकज छाहीं।
(प) ,,—कोटि-कल्पतरु बसैं, लसैं पद-पंकज झाईं।
कोटि कोटि पुनि कामधेनु, बिलुठित रज माईं॥

*उक्त पद्य नागरी प्रचारिणी सभा वाली प्रति में नहीं है।

(य) ४—भए पिया अनुकूल, तूल कोउ नाहिं भयो अब।
(रा०) ,,—वे पिय भए अनुकूल, तूल कोऊ न भयो यब।
(य) ५—निरविधि-सुख कौ मूल, सूल निरमूल करे सब॥
(रा०) ,,—निरवधि सुख के मूल, सूल उनमूल कर्‌यो सब॥
(प) ,,—निरविध सुख के मूल, सूल अनमूल किए सब॥

[1]फिरि आए तिहिँ सुर-तरु-तर, सुन्दर गिरिवर-धर।
आरंभौ अद्भुत-सुरास, उहिँ कमल-चक्र पर ॥ ४ ॥

[2]एक-काल ब्रज-बाल-लाल, तहँ चढ़े जोरि-कर।
[3]नेंकु न इत-उत होत, सबै निरतति बिचित्र-वर ॥ ५ ॥

[4]मनु दरपन सम अवनि, रवनि तापैं छवि देंहीं।
[5]बिलुलित कुंडल-अलक, तिलक झुकि झाँई लेंहीं ॥ ६ ॥[*]

पाठान्तर—

(प) १—तब वा रातहि तेहि सुर-तरु तर, सुन्दर गिरिधर।
(च, „—आए पुनि तहँ सुन्दर-तरु-वर, पिय-गिरिधर वर।
(रा०) „—फिर आए तिहि सुरतरु-तर मोहन गिरिवर—धर।
आरम्भित अद्भुत सुरास, उहि कमल-चक्रपर ॥

(रा०) २—एक बार ब्रजबाल लाल, सब चढ़े जोर-कर।
(ट) ३—नमित न इत उत होइ, सबै निरतैं विचित्र-वर ॥
(रा०) „—नव तन इत उत होत, सबै नितंत विचित्र वर ॥

(अ) ४—मनि, दरपन से अवनि, रवनि ता पर छवि देंहीं।
(च) „—पुनि दरपन सम अवनी, रवनी अति छवि देंहीं।
(रा०) „—मनि दर्पन सम अवनि, रमनि तापर छवि देंही।
बिलुलैं-कुंडल, अलकें, तिलक झुकि झाँकी लेंही
(रा०) ५—बिथुरित कुण्डल, अलक, तिलक झुकि झाँई लेंही ॥

[*] उक्त पद (क') (प) (ट) तीन-प्रतियों में नहीं है।

[1]कमल-करनिका मध्य, जु स्यामा-स्याम वर्नों छवि।
[2]द्वै-द्वै गोपिन-बीच, यों मोहन लाल रहे फवि॥ ७॥

[3]मूरत एक अनेक देखि, सोभा अद्भुत अस।
[4]मंजु-मुकुर-मंडल मधि बहु-प्रतिबिंब होइ जस॥ ८॥❀

रतनावलि-मधि नील-मनी, अद्भुत झलकै जस।
[5]सकल-तियन के संग, साँवरौ-पिय सोभित अस॥ ९॥†

पाठान्तर—

(ङ) १—कमल—कर्णिका मध्य, स्याम स्यामाजु बर्नों छवि।
(रा०) २—द्वै-द्वै गोपियन बिच पुनि मण्डल माँहि लखे फबि॥
(प०) ३—मूरत्ति एक अनेक लगत, अद्भुत—सोभा अस।
(रा०) ४—अविकल दरपन-मण्डल माहिँ विधु आनि परत जस॥
(प) ,,—मंजु मुकुर-मंडल मधि, विधु छवि आनि परति जस॥

❀उक्त पद्य (क) प्रति में नहीं है।

(अ) ५—सकल त्रियन के संग, साँवरौ-पिय सोभै अस।
रत्नावलि मधि नील-मनी, झलकै अद्भुत जस॥

अथवा—
(रा०)—सकल तियन के मध्य सावरो पिय सोभित अस॥

† कमल करनिका मध्य जु स्यामा स्याम वर्नों छवि" से लेकर उक्त छंद तक (क) प्रति म नहीं है जो कि उचित प्रतीत होता है क्योंकि इससे कथानक का सिलसिला तो बिगड़ता ही है साथ ही पुनुरुक्ति दोष भी भासित होता है और शब्दावली भी विचारणीय है। उक्त छंद हाशिये पर किसी दूसरे-व्यक्ति द्वारा पीछे से लिखा मालूम होता है। हाँ छापे की सभी प्रतियों में (उक्त छंद) अवश्य मौजूद है सिर्फ मथुरा की लेथो की छपी को छोड़कर, अत लाचार होकर हम भी इनको लिखना पड़ा।

[१]नव-मरकत-मनि स्याम, कनक-मनि-गन ब्रज-बाला।
[२]वृन्दावन कौ रीझि, मनौं पहिराई माला ॥ १० ॥

नूपुर, कंकन, किंकिनि, करतल-मंजुल-मुरली।
[३]ताल, मृदंग, उपंग, चंग, एकहि-सुर जुरली ॥ ११ ॥

[४]मृदुल-मुरज टंकार, ताल झंकार मिली धुनि।
मधुर-जंत्र के तार, भँवर-गुंजार रली पुनि ॥ १२ ॥*

पाठान्तर—

(च) १—नव-मरकत-मनि-स्याम, कनक-मनि सी ब्रजबाला।
(रा०) ,,—नव मरकत मनि स्याम, कनक मनिमय ब्रजबाला।

(च) २—रीझि मनौं वृन्दावन कौं पहिराई माला ॥
(रा०) ,,—वृन्दावन-गुन रीझि, मनहुँ पहिराई माला ॥

(रा०) ३—ताल मृदंग उपंग चंग वीना-धुनि जुरली ॥

(रा०) ४—कल किंकिन गुंजार नार नूपुर वीना धुनि।
मृदुल मुरज टंकार भँवर झंकार मिली धुनि ॥

*उक्त पद से नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में पद-श्रृङ्खला में बड़ी गड़बड़ है—क्रम का हृदय-द्रावक फेर-फार है, जोकि कहते नहीं बनता, देखते ही बनता है; और उक्त पद उनतीस नंबर पर है।

नैसिय मृदु-पद-पटकनि, चटकनि कट-तारन की ।
लटकनि, मटकनि, झलकनि, कल-कुंडल, हारन की ॥१३॥❀

[1]सुघर-साँवरे-पिय सँग, निरतति यौं ब्रज-बाला ।
[2]ज्यौं घन-मंडल-मंजुल खेलति दामिनि-माला ॥ १४ ॥

पाठान्तर—

❀ उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में इस स्थान पर नहीं है, वहाँ यह पद है । जैसे—

मिलि जु भई इक अद्भुत-धुनि, जिहिँ सुनि-सुनि मुनि मोहै ।
सुर, नर, गन गन्धर्व कछु न जानत हमको है ॥

और उक्त पद नंबर सात पर लिखा है जोकि इस प्रकार है । यथा—

पद पटकनि, भू-मटकनि, चटकनि कटतारन की ।
गज-गति मुसकनि, झलकनि, कल-कुण्डल हारन की ॥

(च) १—साँवरे-पिय के सँग निरतति यौं ब्रज की बाला ।
(रा०) ,,—सावर-प्रिय सँग निर्त्तत, चञ्चल ब्रज की बाला ।
(प) ,,—सुघर-साँवरे सँग निरतति यौं वर ब्रज बाला ।
(रा०) २—मनों घन-मण्डल खेलत, मञ्जुल चपला-माला ॥
(प) ,,—जनु घन मण्डल माँहिँ खेलत है दामिनि माला ॥

❀उक्त पद के आगे एक पद (प) प्रति में और मिलता है । जैसे—

मिलि जु भई इक अद्भुत-धुनि सुनि मुनि—मन मोहै ।
सुर नर, गन-गंधर्व, कछुव न जानौं हम को है ॥

उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में इकीस नंबर पर है और वहाँ यह पद है । जैसे—

ललना अद्भुत राग लेत सोभित सौभा यौं ।
सुभग-घटा पर छटा छबीली थिरकि रहति ज्यौं ॥

[1]चपल-तियन के पाछे, आछे बिलुलित-बैनी।
[2]चचल-रूप लतनि-सँग डोलति ज्यौं अलि-सैनी॥ १५ ॥⊛

मौहन-पिय की मलकन, ढलकन मोर-मुकुट की।
सदाँ वसौ मन मेरे, फरकन पियरे-पट की॥ १६ ॥

[3]कमल वदन पें अलक छुटीं, कछु स्रम-कन झलकनि।
सदाँ रहौ मन मेरे, मोर-मुकुट की ढलकनि॥ १७ ॥+

पाठान्तर—

(थ) १—छबिलि तियन के आछैं पाछैं बिलुलित बैंनी।
चंचल रूप लतानि सग डोलति थति सैंना॥
(त) २—चचल रूप लतनि सँग डोलत जनु अलि सैनी॥

⊛उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति म उनसठ नवर पर है।

(प) ३—वदन कमल पै छुरित अलक, स्रम कन कछु झलकनि।
(रा०) —कमल वदन पर अलकनि कहुँ कहुँ स्रम कन झलकनि।
सदाँ वसौ मन मेरे, मञ्जु मुकुट की लटकनि॥

+उक्त पद्य (ह) प्रति में नहीं है और सब म मौजूद है पर 'पुनिरुक्ति' का यहा भी दोष वर्तमान है जो कि हमारी समझ में नही आता। नागरी प्रचारिणी वाली प्रति म उक्त पद प्रथम पद से आग है।

[1]कोऊ सखि कर-पकर, जु निरतति या छवि सों तिय ।
मानौं करतल फिरति देखि, नट-लट्टू होत जिय ॥१८॥*

[2]कोउ नाइक के भेद-भाव, लावन्य-रूप-वस ।
[3]अभिनै करि दिखरावति अरु गावति पिय के जस ॥१९॥†

पाठान्तर—

(अ)—कोऊ सखी ! कर पकरत, निरतत यौं छबीली-तिय ।
(न) „—सखी ! कोऊ कर पकरैं, निरतति या छबि सौं तिय ।
(ट) „—कोऊ कर पकरैं निरतत, छवि सौं अति-प्रिय-तिय ।
करतल फिरत देखि मानौं नट-लट्टू होनि पिय ॥
(प) „—कोऊ कर पैं अरप-तिरप, निरतत छबीली तिय ।
मानौं करतल फिरत देखि, अति-लट्टू होत पिय ॥
(र०) „—कोऊ नहाँ कर बाँधि,नृत्य जब करन लगी तिय ।
मनु करतल लट फिरत देखिकैं लट्टू होत पिय ॥
(ह) „—कोउ सखि ! कर-पग तिरप बांधि निर्तत नागर-तिय ।
मानौं करम लट्टू फिरत, लखि लट्टू होन पिय ॥

* उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में नैंनीस नंबर पर है ।

(ट) २—नाइक सौं करि भेद-भाव, लावन्य-रूप सब ।
करि अभिनै दिखरावति, गावति गुन पिय के सब ॥
(श) „—कोउ नायक के भेद-भाव लावन्य, रूप सब ।
अभिनय करि दिखरावति, गावति गुन पिय के सब ॥
(क) ३—दिखरावति अभिनय करि, गुन-गावति पिय के जस ॥

† यहाँ से क्रम, नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में सब प्रतियों के समान है ।

[1]तब नागर-नँदलाल, चाँहि कै चकित होत यों।
[2]निज-प्रतिबिंब-बिलास-निरखि,सिसु-भूलि परत ज्यों ॥२०॥

[3]रीझि परसपर वारित, अंबर, अभरन अँग के।
[4]जहँ के तहँ बनि रहत, सकल अद्भुत-रँग-रँग के ॥२१॥

पाठान्तर—

(अ) १—नब-नागर-नँदलाल, चाँहि चित चकित होति यौं।
निज प्रतिबिंब निरखि भूलै, अटपटो-सिसू ज्यौं ॥

(रा०) ,,—तब नागर नँदलाल निपट हीँ, होत बिबस अस।
निज प्रतिबिम्ब बिलास निरखि सिसु भूल रहत जस ॥

(प) २—निज प्रतिबिंब बिलासनि निरखें, सिसु भूलि रहति ज्यौं ॥

(च) ३—वारति रीझि परसपर, अभरन सब अँग अँग के।

(ट) ,,—रीझि परसपर वारि देत, अंबर-अँग-अँग के।
अवर तहीं बनि रहति सब अद्भुत रँग-रँग के ॥

(रा०) ,,—रीझि परसपर वारत, अम्बर भूषन अँग के।
पुनि तवहिं बनि रहत,तहाँ अद्भुत रँग रँग के ॥

(च) ४—छिन औरे बनि रहति, आभरन नाना रँग के ॥

(प) ,,—अवर तिहि छिन बनति, तहाँ अद्भुत रँग-रँग के ॥

[1]कोउ मुरली-सुर-जुरलि, रँगीली रस हिँ बढ़ावति।
कोउ मुरली कों छेकि, छबीली अद्‌भुत-गावति ॥२२॥*

[2]ताहि साँवरौ-छैल, रीझि हँसि लेति भुजन-भरि।
[3]चुंबन करि सुख-सदन, बदन तें दै तँबोल ढरि॥२३॥ *

पाठान्तर—

(प) १—कोऊ मुरली सौं जुरली, रसीली रस हिँ बढावति।
(र०) ,,—कोउ मुरली सँग जुरली, अद्‌भुत रसहि बढावति।
(च) ,,—कोउ मुरली-सुर-लए, रँगीली रँगहि बढावति।
(य) ,,—कोउ मुरली रसवली, रसीली रसहि बढावति।

(रा०) ,,—कोउ मुरली सँग रली (मिली) अली अति रसहि बढावत।
सुघर-पिया सँग गावति, सुन्दरि अति छबि पावत ॥

* उक्त पद से आगे नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में पुनः शृङ्खला में गड़बड़ है।

(क) २—तबै साँवरौ-कुँवर, रीझि लै लेनि भुजन-भरि।
(रा०) ,,—ताहि साँवरो कुँवर, रीझि, हँसि लेति भुजन भरि।

(क) ३—करि चुंबन सुख-सदन, बदन तैं देति मोल ढरि ॥

† उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में दो पद के अनन्तर अर्थात् नम्बर चालीस पर है।

[1]जग में जे संगीत-रीति, सुर-नर रीझति जिहिँ ।
[2]सो ब्रज-तिय के सहज-गान, आगम गावत तिहिँ ॥२४॥

[3]राग-रागिनी-सम जिनकौ, बोलिबौ सुहायौ ।
सो किन पैं कहि आवै, जो ब्रज-देविन गायौ ॥२५॥ *

[4]जो ब्रज-देवी निरतति, मंडल-रास महा-छवि ।
[5]सो रस कैसैं बरनि सकै, ऐसौ है को कवि ॥२६॥ *

पाठान्तर—

(अ) १—जे जग में संगीत-गीत, सुर-मुनि रीझैं जिहि ।
(प) ,,—जो जग हैं, संगीत, निरत, सुर, नर रीझतु जिहि ।
ब्रज-तिय कैं सो सहज, निगम गावत आगम तिहि ॥
(स) २—सो ब्रज-तियनि के सहज गमन, गावति आगम निहि ॥
(रा०) ,,—जग में जो सङ्गीत रीत, सुर-मुनि रीझत जिहि ।
सो ब्रज-तियन कौं सहज, गवन अद्भुत गावत तिहि ॥
(च) ३—राग-रागिनी सौं, जिनि को बोलबौ सुहायौ ।
कापैं सो कहि आवै, ब्रज-देबिनि जो गायौ ॥
(रा०) ,,—राग-रागिनी समुझन कौ, बोलिबो सुहायौ ।
सो कैसे कहि आवै, जो ब्रज-देखिन गायौ ॥
*उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में तेतालीस नंबर पर है ।
(च) ४—ब्रज-देवी वरु निरतत, मंडल करि जु महा-छवि ।
सो रस कैसैं बरनि सकै, जग ऐसौ को कवि ॥
(रा०) ५—सो रस कैसे बरनि सकैं, इहँ ऐसो को कवि ॥
† उक्त पद (क) (प) दो प्रतियों में नहीं है और छापे की प्रतियों में उक्त पद, पूर्व पद के आगे है ।

[1]ग्रीव-ग्रीव भुज मेलि, केलि-कमनीय बढ़ी-अति।
[2]लटकि-लटकि मुरि-निरतति, कापैं कहि आवति गति ॥२७॥

[3]छवि सौं निरतनि, लटकनि, मटकनि मंडल-डोलनि।
कोटि-अमृत-सम मुसिकनि, मंजुल ता-थेई-बोलनि ॥२८॥

[4]कोउ गावत सुर-लै-सौं, लै करि तान नई-नई।
सब-संगीतन छेकि, सु-सुन्दरि गान करत भई ॥२९॥*

पाठान्तर—

(ट) १—पिय-ग्रीवा कर मेलि, केलि-कमनीय बढ़ी-अति।
निरतत लटकि-लटकि कैं, कापैं कहि आवै गति ॥
(रा०) २—लटकि-लटकि निरतति पिय सौं, मनमथ मन्थन-गति ॥
(अ) ३—निरतत छवि सौं लटकत, मटकत मंडल डोलत।
कोटि अमृत-मुसकन मंजुल, ता-थेई-थेई बोलत ॥
(रा०) ,,—कबहुँ परस्पर निर्तति-लटकनि मण्डल डोलनि।
कोटि अमृत सम मुसकनि, मञ्जुल तत-थेई बोलनि ॥
(प ४—कोउ उन तैं अति-गावति, सुर-लय, तान नई-नई।
(य) ,,—कोउ उक्त-उत गावति, सुलफ लै तान नई-नई ॥
संगीततु सब छेकैं, सुन्दरि गान करति भई ॥
(रा०) ,,—कोउ तिनहूँ तैं अधिक अमिश्रित, सुर सुन गनि नई।
सब को छेकि छबीली, अद्भुत गान करत भई ॥
(ह) ,,—कोउ उनतें अति गावत, सुर-लय-लेन तान नई।
सब सङ्गीत छकैं, सु सुन्दरी गान करत भई ॥

*उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में नम्बर अट्ठनीस पर है।

[1]अप-अपनी गति-भेद, सबै निरतनि लागीं जब।
[2]मोहे गंधरब ना-छिन, सुन्दरि-गान कियौ तब ॥३०॥*

[3]भुज-दंडन सौं मिली मंडली निरतति अति-छवि।
[4]कुंडल कच सों उरझै, सुरझै, तहँ बड़रे-कवि ॥३१॥†

पाठान्तर—

(अ) १—अपनी निज गति भेदन सौं निरतन लागीं तब।
(रा०) ,,—अपन अपनी जत गती भेद नर्तन लागनि जब।
(ह) ,,—अप,अपनी जाति भेद तहँ नृर्तन लगीं सब।
(,,) २—गँ प्रब मोहे ततछिनु, सब मिलि गान किया जब॥
(क) ,,—निहि छिनु मोहे गँधरब, सुन्दर-गान करत जब॥
(रा०) ,,—अलि गँधर्व नृप से सब सुन्दर गान करत तब॥
(ह) ,,—गंध्रव मोहे ता छिन, सुन्दरि गान करत जब॥

* उक्त पद नागरि प्रचारिणी वाली प्रतिमें नम्बर सत्ताइस पर है।

(अ) ३—भुज-दंडन सौं मिलति ललित-मंडल निरतति-छवि।
(रा०) ,,—गण्डन सौं मिलि ललित गण्ड मण्डल मण्डित छवि।
(ह) ,,—भुज दण्डनि सौं मिलति ललित मण्डल निर्तत छवि।
(व) ४—कच कुंडल सौं उरझै, सुरझै नाहिँ बड़रे-कवि॥
(म) ,,—कुण्डल सौं कच उरुझै सुरझै जहँ बड़रे कवि॥
(य) ,,—कुण्डल कचसों उरझि सुरझि नहिँ बरनि सके कवि॥

† उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति नम्बर पैंतालीस पर है।

[1]पियहि मुकट की लटकनि, मटकनि, मुरली-रव अस ।
[2]कुहुँकु-कुहुँकु जनु नाँचत, मंजुल-मोर भरे-रस ॥३२॥*

[3]सिर तैं सुमन सु-देस, जु बरसत अति-आँनद-भरि ।
[4]जनु पद-गति पैं रीझि, अलक, पूँजति फूलन करि ॥३३॥†

पाठान्तर—

(प) १—पिया-मुकट की मटकन, लटकन, मुरली-रव अस ।
(ट) ,,—पिय के मुकर को लटकनि, मुरली-नाँद-भरी अस ।
(रा०) ,,—पिय के मुकुट की लटकनि मटकनि मुरली-रव अस ।

(ट) २—नाँचति कुहकि-कुहकि ज्यौं मंजुल मोर-मोर-रास ॥
(,,) ,,—कुहकि कुहकि मनौं (पैं) नाचत मंजुल मोर भर्यौं रस ॥
(ठ) ,,—कुहुकि कुहकि पै बरसति मंजुल मोर भर्यो अस ॥

*उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रतिमें नम्बर छब्बीस पर है ।

(अ) ३—सीसहिँ कुसुमन बरखत, सुन्दर-आनँद अति करि ।
मनु पद-गति पर रीझि, अलक पूँजैं फूलन-भरि ॥
(रा०) ,,—सिरतैं कुसुम जु सुन्दर बरसत अति आनँद भरि ।
(ह) ,,—सींचत सुभग सुवेसन बरसत अति अनंद भरि ।

(,,) ४—जनु पद गति पर रीझि, अलक पूँजति पुहुपनि करि ॥

†उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में नम्बर बत्तीस पर है ।

[1]स्रम-जल सुन्दर-बिंदु, रंग-भरि अति-छबि-बरसत ।
[2]प्रेम-भक्ति-बिरवा जिनके, तिन के हिय-सरसत ॥३४॥*

[3]वृन्दावन कौ त्रिविधि-पवन, बिँजना जु बिलोलै ।
[4]जहँ-जहँ स्रमित बिलोकै, तहँ-तहँ रस-भरि डोलै ॥३५॥†

पाठान्तर—

(क) १—सुन्दर-स्रम-जल-बिन्दु, भरे-रँग अति-छबि बरसत ।
जिनके बिरवा प्रेम-भक्ति, उनके उर सरसत ॥

(रा०) ,,—श्रम भरि सुन्दर बुन्द रङ्ग भरि,कहुँ कहुँ बरसत ।
प्रेम भजत जिनके जिय तिनके हिय अति सरसत ॥

(ह) ,,—स्रम जल बिन्दुक सुन्दर रंग भरि कहु कहु सरसत ।
प्रेम भक्ति बिरुवा जिनके तिनके हिय अति सरसत ॥

*उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में नंबर पचीस पर है ।

(क) ३—श्री वृन्दावन पवन-त्रिविधि, बिजना जु बिलोलत ।
जहँ-जहँ स्रमित बिलोकत, तहँ-तहँ रस भरि डोलत ॥

(रा०) ,,—वृन्दावन कौं त्रिगुन पौन, सो (सुख) बिजन बिलोलै ।
जहँ-जहँ श्रमित बिलोकै, तहँ तहँ रँग (रस) भर्यौ डोलै ॥

†उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में नम्बर अठारह पर है ।

[1]उडत अरुन-अति बसन, सु-मंडल मंडित ऐसैं ।
[2]मनौं सघन-अनुराग-घटा-घन-घुँमड़न जैसैं ॥३६॥*
[3]ता-धूँधरि के मध्य, मत्त-अलि भरमत ऐसैं ।
[4]प्रैम-जाल के गोलक, कछु-छवि उपजत जैसैं ॥३७॥
[5]कुसुम-धूरि-धूँधरी कुंज, मधुकरनि-पुंज जहँ ।
[6]हुलसत रस-आवेस, लटकि कीन्हौ प्रवेस तहँ ॥३८॥ †

पाठान्तर—

(र०) १—अरुन उडत तन-बसन, सु मंडित मंडल ऐसे ।
(रा०) ,,—उडै अरुन पट बास रास मण्डल मण्डत अस ।
(ह) ,—उड़ान अरुन अबीरन अद्भुत ससि मण्डल ऐसी ।
(क) २—सघन-घटा अनुराग मनौं, घुमडत घन जैसे ॥
(छ) ,,—मनौं सघन अनुराग घटा उमड़त घुमड़त रस ॥
(रा०) ,,—मनहुँ सघन अनुराग घटा घन घुमड़त जैसी ॥
*उक्त पद नागरी प्रचारणी वाली प्रति में नम्बर तेईस पर है ।
(ट) ३—ताकी धूँधरि मत्त, मधुप बर भ्रमत जु ऐसें ।
(रा०) ,,—ताकी धूँमरि मत मधुप बन भ्रमत जु ऐसे ।
(,) ४—प्रेम जाल के गोल कछुक छबि उपजत जैसें ॥
(अ) ५—कुसुम धूँधरी कुंज मत्त-मधुकरन-पुंज जहँ ।
(थ) ,,—कुसुमन-धूँधरि कुञ्ज, भक्त मधुकर निवेस जहँ ।
(रा०) ,,—कुसुम धूरि धूँधरे कुंज मधुकरन पुंज जहँ ।
हे करि रस आवेस लटकि कीन्हौं प्रवेस तहँ ॥
(प) ६—ऐसे हुलसत भीवन ग्रीवन, लटकि बेस तहँ ॥
(फ) ,,—एसे हुलसे आवत भीवन लटकि केस जहँ ॥
(न ,,—ऐसें ही रस अलस लटकि कीनो प्रवेश तहँ ॥
†उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में नम्बर उनतालीस पर है ।

[1]नव-पल्लव की सैंनी, अति-सुख-दैंनी सरसै।
[2]सुन्दर-सुमन-सु निरखैं, अति-आँनद हिय बरसै ॥३९॥

[3]विहरति रति-अविरुद्ध-जुद्ध, सुरतें रस—सागर।
[4]उज्जल-प्रेम-उजागर, नागर सब-गुन-आगर ॥४०॥*

हार, हार में उरझि, उरझि बँहियाँ में बँहियाँ।
नोल-पीन-पट उरझि, उरझि बेसर-नथ-मँहियाँ ॥४१॥†

[5]स्रमित सु-सुन्दर-अंग-सरस-अति चलत ललित-गति।
अंसन पै भुज दएं, लटकि-सोभा सोभित—अति ॥४२॥

पठान्तर—

(क) १—नव-पल्लव-दल सैंनी, सुख-दैंनी अति दरसे।
सुन्दर-सुमननि बरखत लखि आँनद हिय बरसै॥

(ह) ,,—नव पल्लव की सैंनी, अति सुख-दैंनी तिहिँ तर, (सिरसै)।
(,,) २—निरखैं सुन्दर सुमन, सु-आँनद हिय बरसै॥

(ख) ,,—सापर सुमन टमेसी, मधुर निरेसी तिहि पर॥

(रा०) ३—बिलसति अति रति जुद्ध, रुद्ध सौं रत-रस-सागर।

(ह) ,,—विहँसति रति अति जुद्ध, रुद्ध सौं रत रस-सागर।

(रा०) ४—उज्जल प्रेम उजागर, सब गुन आगर-नागर॥

*उक्त पद नागरी प्रचारणी वाली प्रति मे नम्बर बावन पर है।

(अ) ५—स्रम-भरे सुन्दर-अंग, सरस-अतिमिलत ललित-गति।

(य) ,,—स्रम-भरे सुन्दर-अंग परसि, अति मिलत-ललित-गति।

(रा०),,—स्रम भरि सुन्दर अंग, रास-रस-बलित-चलित गति।
अंसनि पर भुजवर दीनैं सोभित सोभा अति॥

† उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में नम्बर सत्तावन पर है।

[1]टूटि जु मुक्ता-माल, छूटि रही सुन्दर उर पर।
गिरि तैं जिमि सुरसरी, गिरी द्वै-धार धारि-घर ॥४३॥*

[2]अद्भुत-रस रह्यौ रास, गीति-धुनि सुनि मोह मुनि।
[3]सिला सलिल ह्वै गई, सलिल ह्वै गयौ सिला पुनि ॥४४॥†

पवन-थक्यौ, ससि-थक्यौ, थक्यौ उडु-मंडल सगरौ।
[4]पाछै रवि-रथ थक्यौ, चलयौ नहिं आगैं डगरौ ॥४५॥‡

पाठान्तर—

(अ) १—टूटी मुक्ता-माल, छूटि रही प्यारे-उर पर।
(प) ,,—टूटी मुक्तन-माल, रही छुटि साँवल-उर पर।
(ह) ,,—टूटि मुक्तनि की माल, छूटि रहि साँवर उर पर।
मानौं गिरितैं गिरी, सुरसरी-धार द्विविधि धर॥
(क) २—मानौं गिरि वर धँसी, सुरसरी-धार द्वै विधि धर॥
(फ) ,,—जनु सिखर-पहार तैं सुरसरि धाइ धँसी धर॥
(स) ,,—मनु गिरि तैं सुरसरी, जु द्वै विधि गिरी धाइ धर॥
*उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में नम्बर साठ पर है।
(ध) ३—अद्भुत-रस रह्यौ फैलि, गीति-धुनि सुनि मुनि मोहै।
(व) ४—सिला सलिल ह्वै रहीं, सलिल ह्वै सिला जु सोहै॥
(य) ,,—सलिल सिला ह्वै चली, सलिल ह्वै रह्यौ सिला पुनि॥
† उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में नम्बर उन्तालीस पर है।
(क) ५—ध्यान थक्यौ, बुध थक्यौ, चलन नहिं पावै डगरौ॥
‡ उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में नम्बर सोलह पर है।

[1]रीझि सरद की रजनी, सजनी केतिक-बाढ़ी ।
[2]बिलसत अति-सै स्याम, जथा-रुचि अति-रति-गाढ़ी ॥४६॥

[3]इहि बिधि बिबिधि-बिलास बिलसि, सुख़-कुंज-सदन के ।
[4]चले जमुन-जल क्रीडन, व्रीडन कोटि-मदन के ॥४७॥

[5]उरसि मरगजी-माल, चाल मद-गज-सी मलकति ।
[6]घूँमत रस-मै नैन, गंड-थल स्रम-कन झलकति ॥४८॥*

पाठान्तर—

(प) १—रीझि सरद की राति, न जानै किती-इक बाढ़ी ।
(च) ,,—रीझि सरद की रजनी, जिनके सॉगति बाढ़ी ।
(ठ) ,,—यतिक सरद की रजनी, न जनी केतक बाढ़ी ।
(ढ) २—बिलसति सजनी-स्याम, जथारुथ रुचि-अति गाढ़ी ॥
(थ) ,—विहरत सजनी स्याम जथा रुचि अन्तर (अतिरति) बाढ़ी ॥
(प) ३—इहि विधि-विविधि बिलास हास सुख कुंज-सदन के ।
(फ) ,,—विलसे बिविधि विलास हास सुख-पुंज सदन के ।
(रा०),,—करि अद्भुत कल-केलि, केलि रस कुंज सदन के ।
(ह) ४—चले जमुन जल कीडन क्रीड़न बृन्द सदन के ॥
(अ) ५—माल मरगजी उरसि, चाल मद गज-गति मलकत ।
(रा०) ,,—उरसि मरगजी माल, चाल मद गज गति मलकत ।
(य) ६—घूमति रस-भरे नैंन, गंड स्रम-कन अति-झलकत ॥
(ह) ,,—घूमत रस भरे नैन, गण्ड स्थल स्रमकन झलकत ॥

*उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में नम्बर पचपन पर है ।

[1]धाइ, जमुन-जल धँसे, लसे छवि परति न बरनी।
बिहरत ज्यों गजराज, संग लै तरुनी-करनी ॥४९॥

[2]तिय-गन-तन झलमलत, सु सुन्दर अति-छवि-छाए।
[3]फूलि रहे जनु जमुन, कनक के कमल सुहाए ॥५०॥*

[4]मुख-अरविंदन आगें, जल-अरविंद लगें अस।
[5]भोर भएँ भवनन के दीपक, मंद परत जस ॥५१॥†

पाठान्तर—

(प) १—जाइ जमुन-जल धँसी, लसी छवि जाति न बरनी।
मनु बिहरत गजराज, संग सब तरुनी-करनी॥
(अ) २—तिय-गन तन झलमलत, बदन तहँ अति छवि-छाए।
(क) ,,—तिय-गन के झलमलें बदन, अतिसै-छवि छाए।
(ख) ,,—तिय-तन तंजुल मंजुल, तहँ अति ही छवि छाए।
(पा) ,,—तियनु सु-तन जल-मगन-बदन तहँ अति छवि पाई।
(रा) ,,—तियन के तन जल मगन, बदन तहँ यौं छवि छाई।
फूले हैं जनु जमुन, निकट के कमल सुहाई॥
(ट) ३—रहे फूलि जनु जमुना, कनकहिँ कमल सुहाए॥
(ड) ,,—फूली मानौं जमुना, कनक के कमल सुहाई॥
(थ) ,,—फूली है जनु जमुन, कनक के कमल सुहाए॥
*उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति मे नम्बर छासठ पर है।
(फ) ४—मुख कमलन के आगें, जल अरबिन्द लगें अस।
(ट) ५—भोर भए रज-निसा-महा-छवि मंद परे जस॥
(द) ,,—भोर भऐ भौननि के, दीपक मन्द परत जस॥
†उक्त-पद्य (क) (प) (च) प्रतियों मे नहीं हैं और नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में नम्बर उनहत्तर पर है।

[1]मंजुल-अंजुल भरि-भरि, पिय पैं तिय जल मेलति।
[2]जनु अलि सौं अरविंद-वृन्द, मकरंदन-खेलति ॥५२॥*

[3]छिरकत छैल-छबीले, मंजुल-अंजुल भरि-भरि।
[4]अरुन-कमल-मंडली, फागु खेलति जनु रँग-करि ॥५३॥†

[5]रुचिर-दृगंचल-चंचल, अंचल मैं झलकत अस।
[6]सरस-कनक के कंजन, खंजन जाल परे जस ॥५४॥

पाठान्तर—

(ट) १—भरि-भरि मंजुल-अंजुल पिय कौं तिय जल मेलत।
(य) ,,—भरि-भरि पिय पैं अंजुल मंजुल तिय जल मेलैं।
(रा०),,—मंजुल अंजुल भरि-भरि पियकौं तिय जल मेलत।
(,,) २—मानौं अलिकुल-वृन्द, सहज मकरंदहि खेलत॥
(द) ,,—मानौं अलिकुल सहजै-बस मकरंदहि भेलैं॥
(भ) ,,—जानौं अति अरविन्द वृन्द मकरन्दहि झेलत॥
*उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में पूर्व पद से आगे हैं।
(ट) ३—छिरकत कारे-छल छैल, जमुन-जल अंजुलि भरि-भरि।
(प) ,,—छिरकत जल लै छैल-छबीलो अंजुल भरि-भरि।
(रा०),,—कबहुँ परस्पर छिरकत मंजुल अंजुल भरि-भरि।
(प) ४—अरुन-कमल-मंडली फागु खेलैं रस-रँग करि॥
(रा०),,—अरुन कमल मण्डली फाग खेलत रस (जानौं) रँग भरि॥
*उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रतिमें नंबर उनसठ पर है।
(क) ५—चलत दृगंचल, चंचल, अंचल मैं झलकैं यौं।
(प) ,,—रुचिर-दृगंचल चंचल, वर जगमग-जगमग अस।
(क) ६—सरे-कनक के कंजन, खंजन जाल परे ज्यौं॥
(प) ,,—परे कनक के जाल, सु खंजन तरफरात जस॥

[1]जमुना-जल मैं दुरि-मुरि, कामिनि करति कलोलैं।
[2]मनु नव-घन के मध्य, दामिनी दमकति डोलैं ॥५५॥

[3]कमलन तजि-तजि अलि-गन, मुख-कमलन आवत जब।
[4]छविहिँ छबीली-बाल, छपति जल मैं दबकति तब ॥५६॥

[5]कबहूँ मिलि सब बाल, लाल-छिरकति हैं छवि अस।
[6]मनसिज पायो राज, आज अभिषेक होति-जस ॥५७॥*

पाठान्तर—

(क) १—श्री-जमुना जल दुरि-दुरि कामिनि करत विलोलैं।
(रा०),,—जल जमुना मैं दुरि मुरि करत कामिनि जु किलोलैं।

(छ) २—नव-घन के जनु भीतर दामिनि दमकति डोलैं॥
(प) ,,—नव-घन भीतर जनु दामिनि, अति दमकति डोलैं॥
(रा०) ,,—जनु घन भीतर भीतर ससिगन तारे तरि डोलैं॥
(ह) ,,—मानौं नव घन मध्य दामिनो दामिन डोलै॥

(अ) ३—कमलन तजि कैं अलिगन, मुख-कमलन ढिंग आवत।
(रा०),,—अलगन कमलनि तजि सुमुख कमलनि पर आवत।
(प) ४—छवि मौं छबीली छैल-भैंटि तत छिनहिँ उड़ावत॥

(भ) ,,—छपत छबीली-बाल, हाल जल मैं जु दुरावत॥
(रा०) ,,—छवि सौं छबीले छैल भेंटि तेहि छिनहिँ उड़ावत॥

(अ) ५—कबहुँक सब मिलि बाल, लाल जल छिरकत छवि अस।
(स) ६—पायौ मनसिजराज, राज-अभिषेक होत जस॥

[1]तिनकी सुन्दर-कांति-भाँति मनमोहन भावै।
बाल-बैस की छवि, कवि पैं कछु कहति न आवै ॥५८॥

[2]भींजि बसन तन-असन, निपट-छवि अंकित ह्वै अस।
[3]नैननि कैं नहिँ बैन, बैन कैं नैन नाहिँ जस ॥५९॥

[4]नीर-निचोरति जुवतिननि देखि अधीर भए मनु।
[5]तन-बिछुरनि की पीर, चीर रोवति अँसुवन जनु ॥६०॥

पाठान्तर—

(रा०)१—निकसी सुन्दरि भाँति कान्ति मन ही मन भावै।

(श) २—बाल-बैस छवि जैसे कवि पै कही न आवे ॥
(ह) ,,—बाल बैस छवि कवि पैं कबहूँ कहत न आवै ॥

(अ) ३—बसन भींजि तन-लिपटि, निपट-छवि अंकित है अस।
(ग) ,,—भींजे-बसनन लिपटनि की छवि अंकित भई अस।
(ब) ,,—भीजे बसन तन लपटन अद्भुत-छबि का कहि है।
(रा०),,—भींजि बसन तन लपटि निपट की अद्भुत छवि सब।

(स) ४—नैनन कौं नहिँ बैन, बैन कौं नैननि नहिँ है॥
(रा०) ,,—नैननि के नहिँ बैन, बैन के नहिन नैन तब॥

(रा०)५—रुचिर निचोरनि जुवति नीर लखि भये अधीर तनु॥
(व) ६—तन बिछुरन की पीर, चीर (धीर) अँसुअन रोवत जनु॥

[1]निरखि परसपर छवि सौं, विहरति प्रैंम-मदन-भरि ।
[2]प्रकृति-बाम की छाती, अजहूँ धरकति धरि-धरि ॥६१॥*

[3]तब इक द्रुम-तन चितै, कुँवर-वर आग्या दीनीं ।
[4]निरमल-अंबर, भूषन, तिन तहँ बरखा-कीनीं ॥६२॥

[5]अपनी-अपनी रुचि के, पहिरे-बसन बर्नों छब ।
[6]जगत-मोंहिनी जिती, तिती ब्रज-तिय मोंहनि सब ॥६३॥

पाठान्तर—

(रा०) १—कबहुँ परस्पर छबिसौं भोंखत, प्रेम मदन भरि ।

(अ) २—प्रकृति-बाम की छाती अजहूँ धरकत जिनके डरि ॥
(ह) ,,—प्राकृत काम छाति अजहुँ धरकत जाके डरि ॥

*उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में नंबर इक्यावन पर है ।

(रा०) ३—तब इक द्रुम-तन चितै, कुँवर अस अज्ञा दीनी ।

(स) ४—निरमोलाक अम्बर, भूषन, तिहिँ बरषा कीनी ॥

(प) ५—रुचि अपनी-अपनी के पहरे बसन-असन छुव ।
(रा०),,—अप-अपनी रुचि के पहिरे रुचि परत न बरनी ।

(स) ६—जगत मोंहिनी जे तिनकी ब्रज-तिय मोंहनि सब ॥
(च) ,,—जग में जे मोंहन हैं तिन की ब्रज मोंहनि सब ॥
(रा०) ,,—जग मोहिनी जिती तिन की मोहिनि ब्रज-घरनी ॥
(ह) ,,—जग मे ए मोहन आए तिन की ब्रज तिय मोहिनी सब ॥

[1]सरस-सरद की जोति, मनोहर जगमग-राती।
[2]खेलत रास रसिक-वर, प्रति-छिन नई-नई-भाँती ॥६४॥

[3]ब्रह्म-मुहूरत कुँवर-कान्ह-वर घर आए जब।
[4]गोपन अपनी गोपी, अपने-ढिंग जानी तब ॥६५॥*

फलस्तुति वर्णन

[1]नित्त रास-रस-मत्त, नित्त गोपी-जन-वल्लभ।
[2]नित्त निगम जो कहत, नित्त नव-तन अति-दुल्लभ ॥६६॥

पाठान्तर—

(अ) १—घटे सरद की जोती मनोहर जगमग-राती।
(ट) ,,—ऐसैं ही जोतिक परम-मनोहर सरद हि राती।
(रा०),,—ऐसें ही जोति सरद की परम मनोहर रातें।

(ढ) २—खेलत रास रसिक पिय, दिन-दिन नई-नई भाँती॥
(रा०) ,,—क्रीडत हैं पिय रसिक सु दिन-दिन अन अन भाँतें॥

(क) ३—ब्राह्म महूरत कान्ह कुँवर घर आए गृह जब।
(रा०),,—ब्रह्म मुहूरति कुँअरि कान्ह, सिज्ञ (सब) घर आए तब।

(म) ,,—गोपन अपनी गोपी, अपने ढिंग मानी तब॥
(रा०) ,—गोपनि अपनी गोपी, अपने ढिंग पाईं सब॥

*उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में पूर्व पदों से आगे है।

(क) १—नित्य रास-रस मत्तै, नित गोपी-जन-वल्लभ।
(ग) ,,—नित्य निगम जो कहियत, नित-नौतन तन दुल्लभ॥

[१]यह अद्‌भुत-रस-रास, कहत कछु कहि नहिँ आवै ।
सेस सहस-मुख गावैं, अजहूँ पार न पावै ॥६७॥ *

[२]सिव मन-हीं-मन ध्यावैं, काहू नाहिँ जनावैं ।
[३]सनक, सनन्दन, नारद, सारद, अति-मन-भावै ॥६८॥

[४]जद्यपि हरि-पद-कमल, जु कमला सेवति निस-दिन ।
तद्यपि यह रस सपने, कबहूँ नहिँ पायौ तिन ॥६९॥

पाठान्तर—

(र) १—इहि अद्‌भुत सुख-रास, महा-छवि कहत न आवै ।
(प) ,,—अद्‌भुत यह रस-रासि, महा-छवि कहत न आवत ।
सेस सहस-मुख गावत, तौहू अंत न पावत ॥

* "मंजुलि-अंजुल भरि-भरी पिय पै तिय जल-मेलत" से लेकर उक्त पद्य तक की पदावली (क) (प) प्रतियों में नहीं हैं। और नागरी प्रचारणी वाली प्रति में उक्त पद कुछ पाठ भेद के साथ नम्बर चालीस पर दिया है। यथा :—

अद्‌भुत रस रह्यो रास कहत कछु नहिँ कहि आवै ।
ज्यों मूँकै रस को चसको मन ही मन भावै ॥

(क) २—सिव-मुनि नित ही ध्यावैं, कछुक काहू न जनावैं ।
(प) ,,—सिव अजहूँ मन ध्यावैं, काहू नाहिँ जनावैं ।
(प) ३—सनक-सनंदन, नारद, सारद, अति-हिय-भावै ॥
(रा०) ४—जद्यपि रमा रमनी कमनी, पद सेवत निस दिन ।
यह सुख अपने सपने, कबहूँ नहिँ देख्यो तिन ॥

अज अजहुँ रस-वाँछित, सुन्दर बृन्दावन की।
[1]सोऊ तनकि न पावत, मूलमिटति नहिं तन की ॥७०॥

बिनु अधिकारी भएँ, नाहिं बृन्दावन सूझै।
रेनु कहाँ तैं सूझै, जब-लगि वस्तु न बूझै ॥७१॥

[2]निपट-निकट घट मैं जो अंतरजामी आही।
बिषै-बिदूषित-इन्द्री, पकरि सकैं नहिं ताही ॥७२॥

[3]जो इहि लीला हित सौं गावै, सुनैं सुनावै।
[4]प्रेम-भक्ति सोई पावै औ सब के जिय भावै ॥७३॥ *

पाठान्तर—

(अ) १—पावत तनक न सोऊ, मूल मिटत ना मन की ॥
(रा०) २—निपट निकट घट मे ज्यौं अन्तरजामी आही।
(अ) ३—इहि लीला जो हित सौं, गावै और सुनावै।
(रा०) ,,—जो यहि लीला हित सौं गावै सीखै सुनै सुनावै।
(स) ,,—जो इहि लीला गावैं, हित सौं सुनैं सुनावैं।

(रा०) ४—भक्ति, प्रैम सोइं पावै पुनि सब के मन भावै ॥
(ह) ,,—प्रेम भगति सो पावै अरु सब के हिय भावै ॥

*उक्त पद का पाठ भेद तो (जैसा कि ऊपर उद्धृत किया है) ऐसा ही नागरी प्रचारिणी वाली प्रति मे भी है। पर यह पद (छ) (ज) और (भ) प्रतियों मे नहीं हैं।

[1]प्रेम-प्रीति सौं जो कोउ गावै, सुनैं, धरै-हिय ।
भक्ति-प्रेम तिहिं देति दया करि, नव-नागर-पिय ॥७४॥*

[2] हीन-स्रद्ध, निन्दक, अधर्म-रति, धरम-वहिर-मुख ।
[3]तिनसौं कवहुँ न कहै, कहै तौ नाहिं लहै सुख ॥७५॥

[4]नैन-हींन जो नाइक, ताकौं नव-नागरि जस ।
[5]मँद-हँसनि, सु-कटाच्छ लसनि कौ का जानैं रस ॥७६॥†

[6]भक्त-जनन सौं कहै, जिन्हें भागवतहिं धरम-बल ।
ज्यौं जमुना के मींन, लींन नित रहत जमुन-जल ॥७७॥

पाठान्तर—

(रा०) १—जु कोउ प्रीति सों गान करैं, अति सुनें गुनैं हिय ।
प्रेम-भगति तिहि देहिं दया करि हरि नागर पिय ॥

*उक्त पद्य (क) (प) (ट) (थ) प्रतियों में नहीं है ।

(अ) २—स्रद्धा-हीन, अधरमी, नास्तिक धरम-बहिर-मुख ।
(क) ,,—निन्दक, स्रद्धा-हीन, अधरमी हरि-धरम-बहिर-मुख ।
(रा०) ,,—हीन, असर्धक, निन्दक, नास्तिक धरम-बहिर्मुख ।
(स) ३—तिन सों कबहुँ न कहौ कहौ तो लहौ नहिं सुख ॥
(रा०) ४—नैन-हीन के हेत नवल नागरि-नारी जस ।
(ह) ५—मन्द-हँसनि सुकटाच्छ लसनि वह का जाने रस ॥

†उक्त पद्य (क) (च) (प) प्रतियों में नहीं है ।

(रा०) ६—भगत जनन सौं कहौ जिनकैं भागवत धरम बल ।

[१]जदपि सप्त-निधि भेदिनि जमुना निगम-बखानैं ।
[२] ते तिहि धारहिँ धार रमत, जल छुवत न आनैं ॥७८॥

[३]रसिक जनन के संग रहै, हरि-लीला गावै ।
[४]परम-कान्त, एकान्त प्रेम-रस तब ही पावै ॥७९॥*

[५]इहि उज्जल-रस-माल, कोटि जतनन करि पोई ।
[६]सावधान ह्वै पहिरौ, यह तोरौ मति कोई ॥८०॥

[७]स्रवन, कीरतन, ध्यान-सार, सुमिरिन कौ है पुनि ।
[८]ग्यान-सार, हरि-ध्यान-सार, स्रुति-सार, गुही गुनि ॥८१॥

पाठान्तर—

(रा०) १—जद्यपि सप्त-निधि भेदक जमुना निगम बखानहिँ ।
(थ) २—सो तिहि धारहि वारि रमत जल छुवै न आनैं ॥
(रा०) „—ते तिहि धारहि धार रमत छुवत न जल आनहिँ ॥
(रा०) ३—हरि दासन को संग करै हरि लीला गावै ।
(स) ४—परम कान्ति एकान्त भगति-रस तौ (सोइ) सब पावै ॥
*उक्त पद्य-(अ) (च) (ट) (थ) प्रतियों में नहीं है ।
(स) ५—उज्जल-रस-मनि-माला कोटि जतन कै पोई ।
(ह) ६—सावधान ह्वै-पैरौ, तोरौ जिनि कोई ॥
(अ) ७—स्रवन-कीरतन-सार, सार सुमरन कौ है पुनि ।
(ट) „—उन करि पुनि तन-सार, सार सुमरन कौ पुनि-पुनि ।
(रा०) „—श्रवन सार, कीर्तन को सार सुमिरन कौ सार पुनि ।
(च) ८—ध्यान-सार यौं ध्यान-सार, सब-सार यहै गुनि ॥
(प) „—सब सास्त्र कौ सार-ध्यान-हरि जानि गुथी गुनि ॥
(रा०) „—ज्ञानसार, विज्ञानसार, मतसार महति गुनि ॥

[1]अघ-हरनी, मन-हरनी, सुन्दर-प्रैम-वितरनी ।
[2]"नंददास" के कंठ बसौ, नित मंगल-करनी ॥८२॥

इति श्रीमद्भागवते महा-पुराणे "दशमस्कन्धे रास-क्रीड़ायां" नन्ददासकृतौ पञ्चमोऽध्यायः ।*

पाठान्तर—

(अ) १—मन हरनी, अघ-हरनी, सुन्दर-प्रैम-वितरनी ।
(क) „—अघ-हरनी, हरनी-मन, सुन्दर-प्रैम बितरनी ।
कंठ बसौ नित "नंददास" के मंगल करनी ॥
(रा०) „—मन हरनी, कलिमल-हरनी भव-जल-निधि तरनी ।
(ग) २—बसौ कंठ नित "नंददास" के मंगल-करनी ॥

*उक्त अध्याय को नाम "श्रीमद्भागवत" में 'रासक्रीड़ा वर्णन' लिखा है ।

परिशिष्ट

अर्थात

रास-सम्बन्धी कुछ पद

परिशिष्ट-पदावली

——:o:——

राग-भैरव

हा-हा हो हरि ! नृत्य करौ।
जैसैं करि मैं तुमहिं रिझाऊँ, त्यौं मेरौ-मन तुमहुँ हरौ ।।
तुम जैसैं स्रम-बाहु करत हौ, तैसैंई मैं हूँ डुलाऊँ।
मैं स्रम-देखि तिहारे उर कौ, भुज-भरि-कंठ-लगाऊँ ।।
मैं हारी, त्यौंही तुम हारौ तव, चरन-चाँपि स्रम-मैटौं।
'सूर' स्याम ज्यौं उछँग लेहु मोहि, त्यौंही हँसि मैं भैंटौं ।।

❀

मान लाग्यौ, गिरधर गावै ।
तत-थेई, तत-थेई, ततता-ता-थेई, भैरौं-राग-मिलि-मुरली-बजावै ।।
नाँचत नव-वृषभाँनु-दुलारी, अवघर-गति मैं गति उपजावै ।
गिरिधर-पिय-प्यारी की पद-रज, "कृष्णदास" ले सीस चढ़ावै ।।

❀

मदन-मोहन कमल-नैंन, निरतति-रास-रंगे ।
तत-थेई,तत-थेई, थेई, थेई, गति-अनेक लेति—
मान, गान करत रूप सहज सरस सुघंगे ।।
बिलुलित-बनमाल उरसि, मोर-मुकुट रुचिर-सरस;
जुवतिन-मन-हरन अरुन-दृग-तरंगे ।

कान-कुंडल झलमलात, पीत-वसन फरफरात;
हसत, भुजन धरति चरन, भ्रुकुटी-भाव-भंगे ॥
मोहीं सुर-ललना, भामिनि सिद्ध सकल सुनति-स्रवन;
मुरली-नाद, ग्राम, जति, अधर कल-उपंगे ।
"गोविंद" प्रभु ललितादिक-सहचरी मिल जूथ सकल;
वारि-फेरि देति मदन कोटि-कोटि अंगे ॥

❀

प्यारी-ग्रीवा-भुज-मेल, निरतत पिया-सुजान।
मुदित परसपर लेति गति में गति;
गुन-रासि राधे, गिरिधरन-गुन-निधान ॥
सरस-मुरली-धुनि मिलैं, मधुर-सुर—
रास-रँग-भीने, गावैं अवघर-तान, बँधान ।
'चतुरभुज' प्रभु स्यामा-स्याम की नटनि देखि
मोहे खग, मृग,वन थकित व्योम-यान ॥

❀

निरतति गुपाल-संग, गोपिका मिली ।
अद्भुत-नट-भेष देखि, कोटि-काम अति-बिसेखि;
मुरली अधर-मधुर धरैं सप्त-सुर-रली ॥
गावति पिक-कंठ सरस, परम-रीझि तान-बानि;
भामिनी-सुजान वृषभानु की लली ।
वलय, नूपुर, किंकनी-कटि-झनकत, तत-थेई-थेई—
उघटत, सुख-सबदावलि, ग्रीव-भुज पिली ॥
बाजत मधुरै मृदंग, ताधिलांग गति सुधंग;
संग लेति देति ताल, रास—मंडली ।

कोलाहल करत हंस, मोर-सोर चहुँ ओर;
भोर भऐं फूली मनौं कंज की कली ॥
वृन्दावन नव-निकुंज, प्रेम-पुंज-भरे हरषि—
निरखि तरनि तरनि तनया तीर चाँदनी भली ।
वल्लभ-चरनारविंद-पंकज-मकरंद सरस,
करत पान "मानदास" मोहन अति अली ॥
❀
नाँचति वृषभानु कुँवरि, हंस सुता-पुलिन मध्य,
हंस हंसनी मयूर मंडली वनीं ।
नाँचत गुपाल लाल, मिलवत झप ताल चाल,
गाजत अति मत्त मधुप कामिनी अनी ॥
पदक-लाल, कंठ माल, तरनि तिलक झलक भाल,
स्रवनि-फूलि, वर दुकूल, नासिका मनीं ।
नील कंचुकी सुदेस, चपलौं गलित केस,
मुकलित मनि धन दाम, कटि सु काछनी ॥
मरकत मनि वलय राव, मुखुर नूपुर-धुनि सुभाव,
जावक जुत चरनन नख-चंद्रिका घनी ।
मंद हास, भ्रू-विलास, रास, लास सुख निवास,
अलग लाग लेति निपुन राधिका गुनीं ॥
काम सिंधु, कतव निंदु, रीझि रहे, चरन गहे,
साधु साधु कहत फिरत राधिका-धनीं ।
भेंटति गहि बाँह मूल, उरज परसि भई फूल,
"व्यास" वचन सानुकूल, रसिक जीवनी ॥
❀
सुघग नाँचति नवल किसोरी ।
थेई थेई करति, चहति पीतम दिसि, वदन चंद मनौं तृपित-चकोरी ।
तान, बँधान, मान मैं भामिनि, रिझए स्याम कहत हो—हो री !
"हित हरिवंस" परसपर पीतम, वरवट लयौ मोहन-चित-चोरी ॥

अद्भुत-नट-भेष धरें नाँचत गिरिधरन-लाल;
उघटत संगीत तत-थेई थेई-थेई-थाथे।
लेत उरप मान लाग-डाट सुघर-तान, आन-आन-
गुन-गन-नन-नन-नन-गति-बंधान साथे॥
सरद-निसा पूरनचंद, त्रिविध-वायु वहति मंद;
खग,मृग, द्रुम, वेली, पत्र, पत्र रटत राधे।
जुवती-मंडल समूह, राग रंग कौतूहल;
"राम-कृष्ण हित दमोदर" चरन-अज अराधे॥

राग—रामकली

देखो देखोरी! नागर-नट, निरतत कालिन्दी-तट;
गोपिन के मध्य राजे मुकट-लटक।
काछिनी, किंकनी कटि, पीतांवर की चटक;
कुंडलन किरन-रवि-रथ की अटक॥
तत-थेई, तत-थेई सवद, सकल घट उरप—
तिरप-गति पग की पटक।
रास मैं श्री राधे! राधे!! मुरली मैं एक-रट;
"नंददास" गावें तहाँ निपट निकट॥

❀

निरतत स्याम, स्यामा-हेत।
मुकट-लटकनि भृकुटि-मटकनि, नारि-मन-सुख-देत॥
कबहुँ चलत सुधंग-गति लै, कबहुँ उघटत-वैन।
लोल-कुंडल, गंड-मंडित, चपल-नैननि-सैन॥
स्याम की छबि निरखि नागरि, रही इकटक-जोइ।
"सूर" प्रभु उर लाइ लीनीं, प्रैम-गुन-करि-पोइ॥

राग—बिलावल

चलहु राधिके सुजान ! तेरे हित गुन-निधान;
रास रच्यौ कुँवर-कान्ह, तट कलिन्द-नंदनी।
निरतति जुवती-समूह, रास-रंग अति कुतूह;
बाजति रस मुरलिका, अति-अनंदनी ॥
बंसीबट निकट जहाँ, परम-रमन-भूमि तहाँ;
सकल-सुखद बहति मलय-वायु-मंदनी।
जाती-ईसर-बिकास, कानन अति-से सुबास;
राका-निसि-सरद-मास, बिमल-चंदनी ॥
"कमल दास" प्रभु निहारि, लोचन-भरि घोष-नारि;
नख-सिख सौन्दर्य सीम, दुख-निकंदनी ॥*

❀

निरतति राधा-नंद-किसोर।
ताल, मृदँग सहचरी बजावति, बिच-बिच मुरली कौ कल-घोर ॥
उरप, तिरप पग धरत धरनि पैं, मंडल फिरत भुजन-भुज-जोर।
सोभा-अमित बिलोकि "गदाधर" रीझि-रीझि डारत तृन-तोर ॥

राग—टोड़ी

सुनौं हो स्याम ! इक बात नई।
आज रास राधा अविलोक्यौ, मेरे-मन इहि फूल भई ॥
हँसि-बोलन, डोलन, बन-बिहरन, वे-चितवन न जात चितई।
कौन कहै बृषभाँनु-नंदनी, प्रगट भई मनौं मदन जई ॥

---

*उक्त पद में एक तुक (लायन) कम है।

तुम सम नैन, बैन तुमहीं सम, तुम सम आँनद-केलि-मई।
तिहारो रूप धरि तिहारी ही सौं, तुमहिं परसि भई तुमहीं मई॥
माथैं मुकुट, पीतपट, मुरली, बनमाला छबि-छाई रई।
रचक-भेद रह्यौ या तन मैं, आन साल-छबि पलट लई॥
निय-आलिंगन, पिय अवलंबन, पिय-कौं हँसि कैं अंक दई।
फिरि चितवनि औ मुरि-मुसिक्यावनि, उघटनि मिस-करि नृत्य-ठई।
इहि कौतुक अनूप मन-मोहन, मनौं चोप रस-बेलि छई।
"सूरदास" प्रभु के उर परसत, ललित ललित बलिहारि गई॥

❀

रास-मंडल मैं बन-ठन माधौ गति मैं—गति उपजावै हो।
कर-कंकन झनकार मनोहर, प्रमुदित बेनु-बजावै हो॥
स्याम-सुभग-तन पै दुलित-कर, कूजत चरन-सरोजै हो।
अबला-बृंद अवलोकत हरि-मुख, नैन-विकास मनोजै हो॥
नील-पीत-पट चलत चारु नट, रसमें नूपुर कूँजै हो।
कनक-कुंभ कुच-बीच पसीना, मनहर मौतिन पूँजै हो॥
हेम-लता तमाल अवलंबित, सीस मल्लिका फूली हो।
कुंचित-केस, बीच अरुझाने, मनु अलि-माला झूली हो॥
सरद-बिमल निस-चंद बिराजत, क्रीड़त जमुना कूलैं हो।
"परमानंद स्वामी" कौतूहल, देखत सुर-नर भूलैं हो॥

❀

बिसद-कदंब सघन-बृन्दावन, रच्यौं रास तरनि-तनया-तट।
सरद-निसा-उडुपति उजियारी, पूरचौ नाद-मुरली नागर-नट॥
स्रवन-सुनति चलीं ब्रज-सुन्दरि, साजि-सिंगार पैहैर भूषन-पट।
आलि-हुलास, कुमुदिनी-प्रफुल्लित, निरखि लाल ठाड़े बंसी-बट॥
मंडल-मधि नाचति पिय-प्यारी, गावत सुर टोड़ी-तान बिकट।
"दास सखी" देखति नैननि भरि, वारि-फेरि डारौं कोटि-मदन-भट॥

रुचिर रमति रुचि-रासम् ।
कुसुमित कानन नव-वेली, द्रुम,निजकृत उडुप प्रकाशम् ॥
युवती-युगल युगल-प्रति माधो, करत विनोद विलासम् ।
वेणु, मृदंग, मंजीर,किंकिणी, कणित मधुर मृदु-हासम् ॥
यमुना-तीर भीर खग, मृग की, मद-समीर-सुवासम् ।
वरपत कुसुम इन्द्र, सुर धावत, शंकर त्यजि कैलाशम् ॥
निरखि नैन-छवि मुरझ्यौ मनमथ, लोचन-पद्म-पलाशम् ।
"विष्णुदास"प्रभु गिरिधर क्रीड़ति,कथा कथित शुक,व्यासम् ॥

राग—पट्

आज कमनीय नव-कंज बृन्दा-विपिन,
मदन-मौहन सुखद रास-मडल रच्यौ ।
उदित उड़राज-लखि मुदित ब्रजराज-सुत,
प्रान-प्यारी सहित विविधि-गति-मति नच्यौ ॥
मुकट की लटक, कुंडल की चटक,
भृकुटीन की मटक, पग-पटक बरनी न परत ।
हार उर ऱुरत, कंकन ललित, किंकिनी—
मुखर मंजीर धुनि सुनत जन-मन-हरत ॥
एक तें एक ब्रज-सुन्दरी अधिक गुन—
रूप रस-मत्त गिरिधरन-संग सुर-भरत ।
सबै जोवन्न भरीं उरप पुनि तिरप—
संगीत-गति अलग मति तत-थेई, थेई करत ॥
स्रवन सुनि सुर वधू मुरलिका-काकली,
जदपि पिय निकट तौऊ नहिं धीरज धरत ।
रसिक-मनि-मुकट-नँदलाल की केलि यह—
"गदाधर-मिस्र" नैंकु न मन तैं टरत ॥

रास-विलास रच्यौ नागर नट।
सुचि मंडल निरखति व्रज बाला, नवल-निकुंज सुभग जमुना-तट॥
उघटत तान, बखान भेत-सुर, बाजत ताल, मृदंग, बीन रट।
सनमुख ह्वै नाँचति पिय प्यारी, लेति सुधंग चाल गति अट पट॥
रसिक विहार निरखि सखि हार्यौ, सरद-निसा भूल्यौ अपनी अट।
'कृष्णदास' गिरिधर-श्रीराधा राजति मेघ मनों दामिनि घट॥

❀

खेलत रास रसिक—नँदलाल।
जमुना-पुलिन सरद निस-सोभित रचि मंडल ठाढी व्रज बाल॥
तत थेई, तत-थेई, थेई, थेइ उघटत, बाजत झाँझ, परवावज, ताल।
जम्यौ सरस अति-राग परसपर, गावत कोमल-बैनु रसाल॥
सनमुख लेति उरप, तिरप दोउ, राधा-रसिकनि-मदन-गुपाल।
मनों जलद दामिनि रस-परस, कनक लता जनु स्याम तमाल॥
सुर पुर-नारि निहारि परम रस, रति पति मन मैं भयौ बिहाल।
थकित चंद, गति मंद भयौ अति, चूके मुनि ध्यान धरत निहिँ काल॥
परम विलास रच्यौ नागर-नट, बिलुलित उरसि मनौ अलि-माल।
'कृष्णदास" लाल गिरिधर-गति, पावत नाहिँ हंसि, मराल॥

राग-सारंग

बन्यौं रास-मंडल अहो! जुवति-जूथ मधि नाइक नाँचै, गावै।
उघटत सबद थेई, थेई, ता-थेई गति मैं गति उपजावै॥
बनीं राधा वल्लभ जोरी उपमा दीजै को री!
लटकत है बाँह जोरी, रीझि रिझावै।
सुर नर, मुनि मोहे, जहाँ तहाँ थकित भए;
मीठी मीठी तान लालन बैनु बजावै॥

अंग-अंग चित्र कीऐ, मोर-चंद माथें दिऐ,
काछनी काछै पीतांबर सोभा पावै।
"चतुर-बिहारी" प्यारी-प्यारे ऊपर वारि डारी,
तन, मन धन यह सुख कहत न आवै॥

❀

नट वर गति निरतत हैं, भक्तन उर परसत हैं,
पुलकित-तन हरखत हैं, रास मैं लाल-बिहारी।
बाजत ताल, मृदंग, उपंग, बीना, बाँसुरी सुर तरंग,
थ्र थ्र-ता, थ्र थ्र-ता, थग थग लेति छंद भारी॥
कटि-काछिनी पीत, सुरंग मोर मुकट अति सुधंग,
राख्यौं अरध भाल ललित सीस-पेंच भारी।
आरति करति ब्रज की बाल हँसि हँसि निज कंठ लाइ।
देखत सुर, नर, मुनि औ 'रामदास' बलिहारी॥

❀

तरनि तनया तीर लाल गिरिवर धरन
राधिका-संग निरतत सुभग रास मैं।
तत-थेई, तत थेई करत गति भेद सौं पिय
अंग अंग मिलत सुन्दरी ता समैं॥
नंद नंदन निरखि सुर-सहित सुर नारि,
नैंनु कल नॉद मुनि मोहे अकास में।
थक्यो चंद और सब तारका हू थकि रही
तान सुर-गान "ब्रज पति" करत जा समैं॥

राग—नट

नागरी। नट—नाराइन गायौं।
तान, मान, बंधान सप्त सुर, रागहिं राग मिलायौ॥

चरन घुंघरू, जंत्र भुजन पैं, नीकौ भमक जमायौ।
तत-थेई, तत-थेई, लै गति मैं गति, पति-ब्रजराज रिझायौ॥
सकल-तियन मैं सहज चातुरी, अंग सुधंग दिखायौ।
"व्यास" स्वामिनी धनि-धनि राधा,रास मैं रंग रचायौ॥

❀

आज बन नीकौ रास बनायौ।
पुलिन पवित्र, सुभग जमुना-तट, मौंहन वैंनु बजायौ॥
कर कंकन, किंकिनि-धुनि, नूपुर, सुनि खग, मृग सचुपायौ।
जुवती-मंडल-मध्य स्याम धन, नट नाराइन गायौ॥
ताल, मृदंग, उपंग, मुरज, ढफ, मिलि रस-सिन्धु बढ़ायौ।
बिबिधि बिसद वृषभाँनु-नंदनी, अंग सुधंग दिखायौ॥
अभिनै-निपुन लटक लट लोचन, भृकुटि अनंग लजायौ।
तत-थेई, तत-थेई लै नौतन-गति, पति-ब्रजराज रिझायौ॥
परम-उदार रसिक-चूरामनि, सुख-बारिद बरषायौ।
परिरंभन, चुंबन, आलिंगन, उचित जुवति-जन पायौ॥
बरखत कुसुम मुदित नभ-नाइक, इन्द्र निसान बजायौ।
"हित-हरवंस" रसिक राधा-पति, जस-बितान-जग-छायौ॥

राग—पूर्वी

निरतत गुपाल-लाल तरनि तनया-तीरे।
जुवती-जन संग लिऐं, मनमथ-मन करख किऐं;
अंग-अंग सुखद किऐं, राजत बलवीरे॥
लावन्य-निधि, गुन-आगर, कोक-कला गुन-सागर;
त्रिबिधि-ताप हरति अति सीतल-समीरे।
"आसकरन" प्रभु मौंहन नागर, गुन-निधान संगीत-सागर;
रिझवत ब्रज-बधू नागर फरकत पट-पीरे॥

राग–मालव

मदन-गुपाल रास मडल मै, मालव-राग रस भर्‍यौ गावै।
अवघर-तान-बँधान सप्त-सुर मधुर-मधुर मुरलिका बजावै॥
निरतत सुलफ लेति नौतन-गति, बहु-विधि हस्तक-भेद दिखावै।
उघटत सबद तत-थेई, तत-थेई, जुवति-वृन्द-मन-मोद-बढ़ावै॥
थक्यौ नंद, मोहे खग, नग, मृग, प्रति-छिन अति जु अनागति लावै।
"चतुरभुज" प्रभु गिरिधर नट नागर, सुर नर, मुनि गति, मति-
बिसरावै॥

❀

कलल नैंन प्यारौ, अवघर-तान जानै।
लाग, अलाग, सुर, राग, रागिनी, बहुत अनागत आनै॥
रसिक राइ सिरमौर-गुनन मै, गुन तुम हीं हौ जान।
"कुंभन दास" प्रभु गोवरधन-धरि, हरत सबै मन करत गान॥

❀

निरतत लाल गुपाल रास मै, सकल-ब्रज-बधू सगे।
गिड़-गिड़ तक-थग, तत-थेई, तत-थेई, भामिनि रति रस-रगे॥
सरद विमल नभ उड़पति राजत, गावत तान—तरगे।
ताल, मृदग, झाँझ औ झालर, बाजत सरस सुधगे॥
सिव, विरंच मोहे सुर, नर, मुनि, रति-पति-गति मति-भगे।
"गोविंद" प्रभु रस रास रसिक-मनि, भामिनि लेति उछगे॥

राग–सोरठ

बन्यौ रास-मंडल वर तामै-महा मुदित मृदुल राधा प्यारी।
बरनौं कहा बानक अग अंग की एक रूप, एक वेस,
एक रग, एक-राग, ता मै लेति उपजत गति अति न्यारी॥
गावत तान तरग, निरतत उरप, तिरप—
लाग, डाट, उघटत सबद उपज महा री!

यमुना पुलिन सुभग सीतल समीर मंद,
चंद य ग्यौ निसि सब दिसि लागति उजियारी ॥
मोर मुकट माथैं, श्याम अंग चित्र काछैं,
ग्रीवा भुज मेलि दोऊ निरतत विहारी ।
"कल्यान" के प्रभु पिय प्रेम मगन है लहकत फिरत—
करत रास क्रीडा ऐसैं रीझि बस भए गिरिधारी ॥

राग—श्री

सिरी राग गावति व्रज भामिनि ।
निरतति कोक-कला गुन सुन्दरि,
सकल भामिनी मैं वर कामिनि ॥
मिलवित तत थेई अवघर तान—
बधान विमल राका ससि जामिनि ।
तरनि तनया तीर विमल सुखद जामिनी
गान करति तिय अँग अभिरामिनि ॥
सजल स्याम-घन नवल नंद सुत,
दिपे लागि सोहै सौदामिनि ।
"कृष्णदास" प्रभु गिरि गोवरधन धरि
रिझयौ चाँहति सग मिलि स्वामिनि ॥

राग गौरी

खेलत राम, दुलहिनि-दूलहु ।
सुनहुँ न सखी ! सहित ललितादिक, निरखि निरखि नैन निकिनि फूलहु ॥
अति-कल-मधुर महा-मोहन-धुनि, उपजति हंस-सुता के कूलहु ।
थेई-थेई बचन मिथुन-मुख निसरति, सुर मुनि-देह दसा किनि भूलहु ॥

मृदु-पद न्यास उठत कुंकुम रज, अद्भुत बहत समीर दुकूलहु।
कनक स्याम-स्यामा दोऊ चलि, कच, कुच, हार छुवत भुज-मूलहु॥
अति लावन्य रूप अभिनै-गुन, नाहिंन कोटि-काम सम तूलहु।
भृकुटि-विलास, हास रस-बरसत, "हित हरिवंस" प्रेम-रस भूलहु॥

गोप-वधू-मंडल-मधि नाइक गुपाल लाल,
रुचिरानन निजाधर-मुरलिका धरे।
अद्भुत-नटवर विचित्र, भेस, टेक अति-सुदेस,
कनक कछिस काछि मिली-सिखंड सिखरे॥
कन्क झाँझ झनकत, थेंग-थेंग थगत, किटधि-
किटधि। तत-थेई उघटत रास रस-भरे।
जैसे गिरिराज धरन, कोटि मदन मूरति पै,
"हरजीवन" बलि-बलि ब्रज-पुरन्दरे॥

यह गति नाँच नँचावत-नई
वृन्दावन रस विलास, सुख बढत सई॥
भाँति-भाँति राग गाइ, अलापत सुर कई।
उरप, तिरप मान लेति तत ता थई॥
स्याम सुन्दर करत क्रीडा, प्रेम घटा छई।
कृष्णदास" प्रभु गिरिधर छिन छिन प्रीति नई॥

राग–हमीर

रास में रस-भरी राधिका आवे।
बाहु-पिय अंस धरि, हस गति लटकति
कुच कनक घट सें रसिक मनहिं भावे॥
उरप, तिरप, ताडव, लास्य सुलफनि भेद
निरतति पिय संग मधुर कल हि गावें।

राग—कान्हरौ

बन्यौ मोर-मुकुट नटवर-वपु, स्याम-सुन्दर कमल नैंन,
बाँकी-भौंह, ललित भाल, घुँघरारी-अलकैं।
पीत-वसन, मोती माल, हिऐं पदक कंठ लाल,
हँसनि, बोलनि, गावनि गंड स्रवन कुंडल झलकैं॥
कर-पद भूषण अनूप, कोटि-मदन मोहन रूप,
अदभुत वदन-चंद देखि, गोपी भूली पलकैं।
"कहि भगवानहित रामराय" प्रभु ठाडे रास मंडल मैं,
राधा सौं बाह-जोरी किएं, हिऐं प्रेंम-ललकैं॥

राग—अड़ाना

बंसीवट के निकट हरि रास रच्यौ है, मोर मुकुट औ ओटैं पीत-पट।
बृन्दावन-कुंज-सघन वन, सुभग पुलिन औ जमुना के तट॥
आलस भरे उनींदे दोऊ जन—(श्री) राधा जू औ नागर नट।
'व्यास'' रसिक तन, मन, धन फूले, लेति बलैयाँ कर-अँगुरिन-चट॥

राग—केदारा

सुनि-धुनि मुरली बाजे बन, हरि रास-रच्यौ।
कुंज-कुंज द्रुम, बेलि प्रफुलित, मंडल कंचन-मनिन खच्यौ॥
निरतति जुगल किसोर-किसोरी, मन मिल राग केदारौ सच्यौ।
"श्री हरिदास"के स्वामी स्यामा कुंजविहारी, नीकैं आजु गुपाल नच्यौ॥

❀

रास रच्यौ बन कुँवर-किसोरी।
'मंडल-बिमल सुभग बृन्दावन, जमुना पुलिन स्याम-घन घोरी।
बाजत बैंन, रबाव, किन्नरी, कंकन, नूपुर, किंकिनि सोरी।
तत-थेई, तत-थेई सबद उघटत पिय, भले बिहारि-बिहारिन जोरी॥

बरहा-मुकुट चरन तट गावत, धरैं भुजन में भामिन कौं री।
आलिंगन चुम्बन, परिरंभन, "परमानँद" डारत तृन तोरी॥

❀

आज नंद-नंद मुख-चंद बन राजैं।
जटित मनि-मुकुट औ सुभग कुंडल चटक,
बसन पीत-पट भ्रू-मटक छाजै॥
रास में रसिक वर, ललित संगीत-सुर,
मधुर-मुरली, मृदंग, ताल—बाजै।
"श्री विट्ठल गिरिधरन" कनित नूपुर चरन,
सुनति भई घोप-तिय थकित आजै॥

❀

नाँचति लाड़िली-रास में सुनी हो सहेली! रंग-रह्यौ।
ताही समैं रस-रास-सहाइक, मुखद मलय सौं पवन बह्यौ॥
उड़पति-किरन सुरंजित कानन, नव-कुसुमावलि तिमिर दह्यौ।
जुवती-मंडल मध्य स्याम-घन, राग-वारिनिधि वेनु गह्यौ॥
बोलत मोहिं सुरत मिलवन कौं, उठि चलि मान मेरौ कह्यौ।
"कृष्णदास" प्रभु गिरिधर नागर, तेरौ विलंब क्यों जात सह्यौ॥

❀

आजु गुपाल रच्यौ रास, देखति हेलि जिय हुलास,
नाँचति वृषभाँनु-सुता-संग रंग-भीनें।
गिड़ि-गिड़ि, तक थुंग, थुंग, तत्तत-थेई—थेई, थेई,
गावत केदारौ-राग सरस-तान लीनें॥
फूले बहु-भाँति-फूल, सुभग पुलिन-जमुना-कूल,
मलय-पवन बहत गगन, उड़पति गति छीनें।
"गोविंद" प्रभु करति केलि, भामिनि रस-सिन्धु मेलि,
जै-जै सुर सबद कहत आनंद-रस भीनें॥

राग—बिहाग

बन मैं रास रच्यौ बनवारी।
जमुना-पुलिन मल्लिका फूली सरद-रैन उजियारी॥
मंडल-बीच स्याम-घन सुन्दर, राजति गोप कुमारी।
प्रगटत कला अनेक रूप तिहिं अवसर लाल बिहारी॥
सीस मुकट कुंडल की झलकन, अलक बनी घुँघरारी।
कंबु कंठ-ग्रीवा की डोलन, छीन-लंक लैहैकारी॥
धाइ, धाइ झपटत, उर लपटत, उरप, तिरप-गति न्यारी।
निरतत, हँसत, मयूर मंडली, लागत सोभा भारी॥
वैनु-नाँद-धुनि सुनि सुर, नर, मुनि,तन की दसा बिसारी।
"श्री विट्ठल" गिरिधरन लाल की बानिक पै बलिहारी॥

❀

मानौं माई घन-घन अंतर दामिनि।
घन-दामिनि, दामिनि घन अंतर, सोभित हरि-ब्रज-भामिनि॥
जमुना-पुलिन मल्लिका मुकलित, सरद सुहाई जामिनि।
सुन्दर ससि, गुन रूप रासि-निधि, आँनद मन बिस्रामिनि॥
रच्यौ रास, मिलि रसिक राइ सौं, मुदित भई ब्रज-बामिनि।
रूप-निधान स्याम-घन सुन्दर, अंग-अंग अभिरामिनि॥
खंजन, मीन, मयूर, हँस पिक भेद नई गज-गामिनि।
कौतुक घने सु सुर "नागर" सँग, काम बिमोह्यौ कामिनि॥

❀

पिय कौं नँचवनि सिखावति प्यारी।
वृन्दावन में रास रच्यौ है, सरद-रैन-उजियारी॥
ताल, मृदंग, उपंग बजावति, अति-प्रवीन ललितारी।
रूप-भरी, गुन हाथ छरी लै, डरपति छैल-बिहारी॥
बीना, वैनु, नूपुर धुनि बाजत, खग-मृग बुद्धि बिसारी।
"व्यास"स्वामिनी की छवि निरखति,रीझि देति कर तारी॥

श्री रासलीलाऽमृतस्तोत्र

बजति कुंज में मंजु-बाँसुरी, नव-वधू बँधी प्रेम-रासुरी।
घर तजी गईं कृष्ण-पासुरी, सरद चंद कीन्यो उजासु री॥

हरि कियौ अबे मंद हासुरी, निरखि कैं भयौ ताप-नासु री।
सुमन कुंज रातैं विकासुरी, भ्रमर पुंज गुंजैं सुबासु री॥
गुन भरी लिया रूप रासुरी, पुनि प्रवीन ह्वै प्रेम-गासुरी।
अतनु-मोद भाव प्रकासुरी, मिलि गुपाल कीन्यौ विलासु री॥

मद-गुमान ह्वै जानि तासुरी, हरि भे छिपे श्री निवासु री।
विरह नारि नाख्यौ हुतासुरी तरु-लतानि पूँछैं उदासुरी॥
सघन-कुंज कीनी तलासुरी, गुन-कथा रची याहि आसुरी।
भरति नैंनि ऊँचे उसासुरी, करि कृपा-मिले पीत बासुरी॥

वदन-कंज ह्वै चारु-हासुरी मदन-मान जातैं निरासुरी।
कर गहैं जुरी आस-पासुरी, भरति अंक बाढ्यो हुलासुरी॥
अधर पान कीनैंहु प्यासुरी, मिटति नाँहि जेतै उपासुरी।
लिपटि स्याम सौं ऐसैं भासुरी घन सुदामिनी भाद्र मासुरी॥

करति कृष्ण के संग रासुरी, सरस राग गावैं खुलासुरी।
सुर जु सप्त नीकैं निकासुरी, मुरज बीन बाजैं मिठासुरी॥
बजत मंजु मंजीर लासुरी, नचति मोर छाड़ैं ग्रनासुरी।
सुर विमान छाए अकासुरी, परत पुस्प वृष्टी तहाँ सुरी॥

कटि गई सबै गेह फाँसुरी, हटि गयौ जु संसार त्रासुरी।
चरन भाँभि दीजै निवासुरी, सरन "गोकुलाधीस" दासु री॥*

---

*उक्त छन्द दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता और चौरासी-वैष्णवों की वार्ता के रचयिता प्रसिद्ध श्री 'गोकुलनाथजी गोस्वामि कृत है।

भँवर-गीत

ऊधौ[1] को उपदेस सुनो ब्रजनागरी,
रूप सील लावन्य सबै गुन आगरी।
प्रेम धुजा रसरूपिनी उपजावनि सुख पुंज,
सुन्दर स्याम विलासिनी नव वृन्दावन कुंज।
सुनो ब्रजनागरी ॥ १ ॥

कहन स्याम संदेस एक मैं तुमपै आयौ,
कहन समै संकेत कहूँ औसर[2] नहिं पायौ।
सोचत ही मन मे रह्यो कब पाऊँ इक ठाउँ,
कहि सँदेस नँदलाल को बहुरि मधुपुरी जाउँ।
सुनो ब्रजनागरी ॥ २ ॥

सुनत स्याम को नाम ग्राम गृह की सुधि भूली,
भरि आनँद रस हृदय प्रेम बेली द्रुम फूली।

पाठान्तर—
१ उधव को उपदेस।
२ अवसर नहिं पायो।

पुलकि रोम सब अँग भये भरि आये जल नैन,
कंठ घुटे गदगद गिरा बोले जात न बैन।
व्यवस्था[1] प्रेम की ॥ ३ ॥

अर्घासन बैठारि बहुरि परिकरमा दीन्ही,
स्याम सखा निज जानि बहुरि सेवा बहु कीन्ही
बूझत[2] सुधि नँदलाल की बिहँसत सुख ब्रजबाल,
नीके हैं बलबीर जू बोलति बचन रसाल।
सखा सुन स्याम के ॥ ४ ॥

कुसल स्याम औ राम[3] कुसल संगी सब उनके,
जदुकुल सिगरे कुसल परम आनंद भवन के।
बूझन ब्रज कुसलात को हौं आयौ तुम तीर,
मिलिहैं थोरे दिवस में जनि जिय होहु अधीर।
सुनो ब्रजनागरी ॥ ५ ॥

सुनि मोहन संदेस रूप सुमिरन है आयो,
पुलकित आनन कमल अंग आवेस जनायो।

---

१ विवस्था प्रेम का।

२ पूछत सुधि नँदलाल की।

३ राम अरु स्याम।

विह्वल[1] ह्वै धरनी परी व्रजवनिता मुरझाय,
दै जल छींट प्रबोधहीं ऊधौ[2] बैन सुनाय ।

सुनो व्रजनागरी ॥ ६ ॥

वै तुमतें नहिं दूरि ग्यान की आँखिन देखौ,
अखिल विस्व भरपूरि रूप सब उनहिं बिसेखौ ।
लोह दारु पाषान में जल थल महि आकास,
सचर अचर बरतत सबै जोति ब्रह्म परकास ।

सुनो व्रजनागरी ॥ ७ ॥

कौन ब्रह्म को जोति ग्यान कासों कहो ऊधो,
हमरे सुंदर स्याम प्रेम को मारग सूधो ।
नैन बैन स्रुति नासिका मोहन रूप लखाय,
सुधि बुधि सब मुरली हरी प्रेम ठगोरी लाय ।

सखा सुन स्याम के ॥ ८ ॥

यह सब सगुन उपाधि रूप निर्गुन है उनको,
निराकार[3] निर्लेप लगत नाहिं तीनों गुन को ।

---

१ विहल ह्वै धरनी परी ।

२ ऊधव बैन सुनाय ।

३ निराकार निरलेप लगन नहिं ।

हाथ न पाउँ[1] न नासिका नैन बैन नहिं कान,
अच्युत जोति प्रकासहीं सकल विस्व को प्रान।
सुनो ब्रजनागरी ॥ ९ ॥

जो मुख नाहिन हुतो कहो किन माखन खायो,
पायन बिन गोसंग कहो बन बन को धायो।
आँखिन में अंजन दयो गोवरधन[2] लयो हाथ,
नन्द जसोदा पूत हैं कुँवर कान्ह ब्रजनाथ।
सखा सुन स्याम के ॥ १० ॥

जाहि कहत तुम कान्ह ताहि कोउ पिता न माता,
अखिल अंड ब्रह्मंड विस्व उनहीं में जाता।
लीला गुन अवतार है धरि आये तन स्याम,
जोग जुगुति ही पाइये परब्रह्म पुर धाम[3]।
सुनो ब्रजनागरी ॥ ११ ॥

ताहि बतावहु जोग जोग ऊधौ जेहि भावै
प्रेम सहित हम पास नंद नंदन गुन गावै।

---

१ हाथ न पाँय।
२ गोवर्द्धन लयो हाथ।
३ पदधाम।

नैन बैन मन प्रान में मोहन गुन भरपूरि,
प्रेम पियूषहि[१] छाँड़ि कै कौन समेटै धूरि।
सखा सुन स्याम के ॥ १२ ॥

धूरि बुरी जो होय ईस क्यों सीस चढ़ावै,
धूरि छेत्र में आय कर्म करि हरिपद पावै।
धूरिहि तें यह तन भयो धूरिहि तें ब्रह्मंड,
लोक चतुर्दस धूरि तें सप्तदीप नवखंड।
सुनौ ब्रजनागरी ॥ १३ ॥

कर्म धूरि की बात कर्म अधिकारी जानैं,
कर्म धूरि को आनि प्रेम अमृत में सानैं।
तबही लों सब कर्म है जब लौं[२] हरि उर नाहिं,
कर्मबद्ध सब विस्व के जीव बिमुख है जाहिं।
सखा सुन स्याम के ॥ १४ ॥

तुम कर्महि कस निन्दत जासों सदगति होई,
कर्मरूप तें बली नाहिं त्रिभुवन में कोई।
कर्महि तें उतपत्ति है कर्महि तें है नास,
कर्म किये तें मुक्ति है परब्रह्मपुर बास।
सुनौ ब्रजनागरी ॥ १५ ॥

---

१ पियूषैं छाँडि के।
२ जब लगि हरि उर नाहिं।

कर्म पाप अरु पुन्य लोह सोने की बेरी,
पायन बंधन दोउ कोउ मानौ बहुतेरी।
ऊँच कर्म तें स्वर्ग है नीच कर्म तें भोग,
प्रेम बिना सब पचि मरें विषय वासना रोग।
सखा सुन स्याम के ॥ १६ ॥

कर्म बुरे जो होय जोग काहे को[1] धारैं,
पद्मासन सब धारि रोकि इन्द्रिन को मारैं।
ब्रह्म अगिन जरि सुद्ध ह्वै सिद्धि[2] समाधि लगाय,
लीन होय सायुज्य में जोतिहि जोति समाय।
सुनो ब्रजनागरी ॥ १७ ॥

जोगी जोतिहिं भजें भक्त निज रूपहि जानैं,
प्रेम पियूषहि[3] प्रगट स्यामसुन्दर उर आनैं।
निर्गुन गुन जो पाइये लोग कहैं यह नाहिं,
घर आयो नाग न पूजहीं बाँबी पूजन जाहिं।
सखा सुन स्याम के ॥ १८ ॥

जो उनके[4] गुन होय बेद क्यों नेति बखानैं,
निर्गुन सगुन आतमा रचि ऊपर सुख सानैं।

---

[1] कोउ काहे धार।
[2] सुन्य समाधि लगाय।
[3] प्रेम पियूष प्रगट।
[4] जो हरि के गुन न,

वेद पुराननि खोजि कै पायौ नहिं गुन एक,
गुनहूँ के गुन होहिं जौ कह अकास किहि टेक ।
सुनो व्रजनागरी ॥ १९ ॥

जौ उनके गुन नाहिं और गुन भये कहाँ तें,
बीज बिना तरु जमै मोहि तुम कहो कहाँ तें ।
वा गुन की परछाँह री माया दर्पन बीच,
गुन तें गुन न्यारे भये अमल वारि मिलि कीच ।
सखा सुन स्याम के ॥ २० ॥

माया के गुन और और गुन हरि के जानो,
उन गुन को इन माँहि आनि काहे को सानो ।
जाके गुन अरु रूप को जान न पायो भेद,
तातें निर्गुन ब्रह्म को वदत उपनिषद वेद ।
सुनो व्रजनागरी ॥ २१ ॥

वेदहु हरि के रूप स्वाँस मुख तें जो निसरै,
कर्म क्रिया आसक्ति सबै पिछली सुधि बिसरै ।
कर्म मध्य ढूँढे सबै किनहु न पायो देख,
कर्म रहित ह्वो पाइये तातें प्रेम बिसेख ।
सखा सुन स्याम के ॥ २२ ॥

प्रेम जो कोऊ वस्तु रूप देखत लौं लागै,
वस्तु दृष्टि बिन कहौ कहा प्रेमी अनुरागै ।

तरनि चन्द्र के रूप कों गुन नहिं पायो जान,
तौ उनको कह जानिये गुनातीत भगवान।
सुनो ब्रजनागरी ॥ २३ ॥

तरनि अकास प्रकास जाहिमें[१] रह्यौ दुराई,
दिव्यदृष्टि बिनु कहौ कौन पै देख्यौ जाई।
जिनकी वै आँखैं नहीं देखैं कब वह रूप,
तिन्हैं साँच क्यौं ऊपजै परे कर्म के कूप।
सखा सुन स्याम के ॥ २४ ॥

जब करिये नित कर्म भक्तिहू जामैं आई,
कर्म रूप कातें कहौ कौन पै छूट्यौ जाई।
क्रम क्रम कर्म सबहि किये कर्म नास ह्वै जाय,
तब आतम निहकर्म[२] ह्वै निर्गुन ब्रह्म समाय।
सुनो ब्रजनागरी ॥ २५ ॥

जौ हरि के नहिं कर्म कर्मबंधन क्यों आवै,
तौ निर्गुन है वस्तु मात्र परमान बतावै।
जौ उनको परमान है तो प्रभुता कछु नाहिं,
निर्गुन भये अतीत के सगुन सकल जग माहिं।
सखा सुन स्याम के ॥ २६ ॥

---

१ तेजमय रह्यौ दुराई।
२ निष्कर्म हैं।

जो गुन आवै दृष्टि माँझ नहिं ईस्वर सारे,
इन सवहिन तें वासुदेव अच्युत[१] हैं न्यारे।
इंद्री दृष्टि विकार ते रहित अधोक्षज जोति,
सुद्ध सरूपी जान जिय तृप्ति जु ताते होति।
सुनो ब्रजनागरी ॥ २७ ॥

नास्तिक जे हैं लोग कहा जानैं हित रूपै,
प्रगट भानु को छांड़ि गहैं परछाहीं धूपै।
हमकों बिन वा रूप के और न कछू सुहाय,
ज्यों करतल आमलक कै कोटिक ब्रह्म दिखाय।
सखा सुन स्याम के ॥ २८ ॥

ऐसे में नन्दलाल रूप नैनन के आगे,
आय गये छवि छाय बने पियरे उर बागे।
उधौ[२] सों मुख मोरि कै बैठि सकुचि कह बात,
प्रेम अमृत मुख तें स्रवत अंबुज नैन चुचात[३]।
तरक रसरीति की ॥ २९ ॥

अहो नाथ श्रीनाथ[४] और जदुनाथ गुसाईं,
नन्द नन्दन बिडराति फिरति तुम बिन सब गाईं।

[१] अच्युत हैं न्यारे।
२ ऊधव सों मुख मोरि न।
३ अम्बुज नैन चुचात।
[४] रमानाथ और जदुनाथ गोसाईं।

काहे न फेरि कृपाल ह्वै गो ग्वालन सुधि लेहु,
दुख जलनिधि हम बूड़हीं कर अवलंवन देहु।
निठुर ह्वै कहँ रहे ॥ ३० ॥

कोउ कहै अहो दरस देहु पुनि बेनु बजावौ,
दुरि दुरि बन की ओट कहा हिय लोन लगावौ।
हमकों तुम पिय एक हौ तुमको हमसी कोरि,
बहुत भाँति नीके रहो[१] प्रीति न डारौ तोरि।
एकही बार यौं ॥ ३१ ॥

कोउ कहै अहो दरस देत पुनि लेत दुराई,
यह छल विद्या कहो कौन पिय तुम्है सिखाई।
हम परबस आधीन है तातें बोलत दीन,
जल बिन कहो कैसे जियैं गहिरे जल की मीन।
बिचारहु रावरे ॥ ३२ ॥

कोउ कहै अहो स्याम कहा इतराय गये हौ,
मथुरा कौ अधिकार पाय महाराज भये हौ।
ऐसी कछु प्रभुता हुती जानत कोऊ नाहिं,
अबला बुद्धि हम डर गईं बली डरैं जग माहिं।
पराक्रम जानि कै ॥ ३३ ॥

---

१ बहुत भाँति के रावरे।

कोउ कहैं अहो स्याम चहत मारन जो ऐसे
गिरि गोवर्धन धारि करी रच्छा तुम कैसे।
ब्याल अनल विष ज्वाल तें राखि लये सब ठौर,
अब बिरहानल दहत हौ हँसि हँसि नन्दकिसोर।
चोरि चित लै गये ॥ ३४ ॥

कोउ कहै ये निठुर इन्हें पातक नहिं ब्यापै,
पाप पुन्य के करनहार ये ही है आपै।
इनके निर्दय रूप में नाहिन कछू विचित्र,
पय पीवत ही पूतना मारी बाल चरित्र।
मित्र ये कौन के ॥ ३५ ॥

कोउ कहै री आज नाहिं आगे चलि आई,
रामचंद्र के धर्म रूप में ही निठुराई।
जग्य करावन जात हे बिस्वामित्र समीप,
मग में मारी ताड़का रघुबंसी कुलदीप।
बालही रीति यह ॥ ३६ ॥

कोउ कहै जे परम धर्म इस्त्रीजित पूरे,
लच्छ लच्छ संधान धरे आयुध के रूरे।
सीताजू के कहे तें सूपनखा[१] पै कोपि,
छेदि अंग बिरूप कै लोगन लज्जा लोपि।
कहा ताकी कथा ॥ ३७ ॥

---

[१] सूर्पनखा पै कोपि।

कोउ कहै री सुनौ और इनके गुन आली,
बलि राजा पै गये भूमि माँगन बनमाली।
माँगत बामन रूप धरि नापत करी कुदाँव
सत्य धर्म सब छाँड़ि कै धर्यौ पीठ पै पाँव।
लोभ की नाव ये ॥ ३८ ॥

कोउ कहै री कहा हिरनकस्यप नें बिगर्यौ,
परम ढीठ प्रहलाद पिता के सनमुख झगर्यौ।
सुत अपने को देत हो सिच्छा खंभ बँधाय,
इन वपु धरि नरसिंह को नखन बिदार्यौ जाय।
बिना अपराध ही ॥ ३९ ॥

कोउ कहै इन परसुराम है माता मारी,
फरसा काँधे धरी भूमि छत्रिन संघारी।
सोनित कुण्ड भराय के पोषे अपने पित्र,
उनके निर्दय रूप से नाहिन कछू बिचित्र।
बिलग कह मानिये ॥ ४० ॥

कोउ कहै री कहा दोष सिसुपाल नरेसै,
ब्याह करन कौ गयौ नृपति भीषम के देसै।
दलबल जोरि बरात कौ ठाढे है छबि बाढ़ि,
इन छल करि दुलही हरी छुधित ग्रास मुख काढ़ि।
आपने स्वारथी ॥ ४१ ॥

यहि विधि होइ आवेस परम प्रेमहिं अनुरागी,
और रूप पिय चरित तहाँ ते देखन लागी।
रोम रोम रहे ब्यापि कै जिनके मोहन आय,
तिनके भूत भविष्य कौं जानत कौन दुराय।
रँगीली प्रेम की ॥ ४२ ॥

देखत इनको प्रेम नेम उधौ[१] को भाज्यौ,
तिमिर भाव आवेस बहुत अपने मन लाज्यौ।
मन में कह रज पाय कै लै माथे निज धारि,
हौं तो कृतकृत ह्वै रहौं त्रिभुवन आनँद वारि।
बंदना जोग ये ॥ ४३ ॥

कबहुँ कहै गुन गाय स्याम के इनहिं रिझाऊँ,
प्रेम भक्ति तें भले स्यामसुन्दर को पाऊँ।
जिहि विधि मोपै रीझहीं सो विधि करौं बनाय,
ताते मो मन सुद्ध ह्वै दुविधा ग्यान मिटाय।
पाय रस प्रेम को ॥ ४४ ॥

ताही छिन इक भँवर कहूँ तें उड़ि तहँ आयो,
ब्रज बनितन के पुंज माँहि गुंजत छवि छायो।

---

१ ऊधव को भाज्यौ

बैठ्यौ चाहत पायँ पर अरुन कमल दल जानि,
मनु मधुकर ऊधौ[1] भयौ प्रथमहि प्रगट्यौ आनि।
मधुप को भेस धरि ॥ ४५ ॥

ताहि भँवर सों कहैं सबै प्रति उत्तर बातैं,
तर्क वितर्कनि युक्त प्रेमरस रूपी घातैं।
जनि परसौ मम पाँव रे तुम मानत हम चोर,
तुमही सों कपटी हुते मोहन नंदकिसोर।
यहाँ तें दूरि हो ॥ ४६ ॥

कोउ कहै री बिस्व माँझ जेते हैं कारे,
कपट कुटिल की कोटि परम मानुष मसिहारे।
एक स्याम तन परसि कै जरत आजु लौं अंग,
ता पाछे यह मधुपहू लायो जोग भुवंग।
कहाँ इनको दया ॥ ४७ ॥

कोउ कहै री मधुप भेस उनहीं को धार्यौ,
स्याम पीत गुञ्जार बैन किंकिनि झनकार्यौ।
या पुर गोरस चोरि कै फिरि आयो यहि देस,
इनको जनि मानहु कोऊ कपटी इनको भेस।
चोरि जनि जाय कछु ॥ ४८ ॥

---

१ ऊधव भयौ।

कोउ कहै रे मधुप कहैं अनुरागी तुमको,
कौने गुन को जानि यही अचरज है हमको।
कारो तन अति पातकी मुख पियरो जगनिंद,
गुन अवगुन सब आपनो आपुहि जानि अलिंद।
देखि लै आरसी॥ ४९॥

कोउ कहै रे मधुप कहा तू रस को जानै,
बहुत कुसुम पै बैठि सबै आपन सम मानै।
आपन सम हमको कियो चाहत है मतिमंद,
द्विविध ग्यान उपजाय कै दुखित प्रेम आनंद।
कपट के छंद सों॥ ५०॥

कोउ कहै रे मधुप कहा मोहन गुन गावै,
हृदय कपट सों परम प्रेम नाहिन छवि पावै।
जानति हौं सब भाँति कै सरबस लयो चुराय,
यह बौरी ब्रजवासिनी को जो तुम्हे पतियाय।
लहे हम जानिकै॥ ५१॥

कोउ कहै रे मधुप कौन कह तोहिं मधुकारी,
लिये फिरत मुख जोग गाँठि काटत बेकारी।
रुधिर पान कियो बहुत कै अरुन अधर रँगरात,
अब ब्रज में आये कहा करन कौन की घात।
जात किन पातकी॥ ५२॥

कोउ कहै रे मधुप प्रेम पटपद पसु देख्यो,
अबलौं यहि ब्रजदेस माहिं कोउ नाहिं बिसेख्यो।
द्वै सिंग आनन ऊपर रे कारो पीरो गात,
खल अमृत सम मानहीं अमृत देखि डरात।
बादि यह रसिकता॥ ५३॥

कोउ कहै रे मधुप ग्यान उलटो लै आयो,
मुक्ति परे जे रसिक तिन्हैं फिरि कर्म बतायो।
वेद उपनिषद सार जो मोहन गुन गहि लेत,
तिनको आतम सुद्ध करि फिरि फिरि संथा देत।
जोग चटसार मैं॥ ५४।

कोउ कहै रे मधुप निगुन इन बहुकरि जान्यो,
तर्क वितर्कनि जुक्ति बहुत उनहीं यह आन्यो।
पै इतनो नहिं जानहीं बस्तु बिना गुन नाहिं,
निर्गुन भए अतीत के सगुन सकल जग माहिं।
सखा सुन स्याम के॥ ५५॥

कोउ कहै रे मधुप तुम्हैं लज्जा नहिं आवै,
सखा तुम्हारो स्याम कूबरीनाथ[१] कहावै।
यह नीची पदवी हुती गोपीनाथ कहाय,
अब जदुकुल पावन भयो दासी जूठन खाय।
मरत कह बोल को॥ ५६॥

[१] कुबरीदास कहावै।

कोउ कहै अहो मधुप स्याम जोगी तुम चेला,
कुबजा तीरथ जाय कियो इंद्रिन को मेला।
मधुवन सुधि बिसराय कै आये गोकुल माहिं,
इहाँ सबै प्रेमी बसैं तुमरो गाहक नाहिं।
पधारो रावरे ॥ ५७ ॥

कोउ कहै रे मधुप साधु मधुवन के ऐसे,
और तहाँ के सिद्ध लोग है हैं धौं कैसे।
औगुन गुन गहि लेव हैं गुन को डारत मेटि,
मोहन निर्गुन को गहे तुम साधुन कों भेंटि।
गाँठि को खोय कै ॥ ५८ ॥

कोउ कहै रे मधुप होहिं तुमसे जो संगी,
क्यों न होहिं तन स्याम सकल बातन चौरंगी।
गोकुल में जोरी कोऊ पाई नाहिं मुरारि,
मदन त्रिभंगी आपु हैं करी त्रिभंगी नारि।
रूप गुन सील की ॥ ५९ ॥

यहि विधि सुमिरि सुविन्द कहत ऊधौं[१] प्रति गोपी,
भृंग संग्या करि कहत सकल कुल लज्जा लोपी।

---

१ गोविंद कहत ऊधव प्रति गोपी।

ता पाछे इकबार ही रोइँ सकल ब्रजनारि,
हा करुनामय नाथ हो केसव कृष्ण मुरारि।
फाटि हियरो चल्यो ॥ ६० ॥

उमगँ जो कोउ सलिल सिन्धु लै तन को धारनि,
भींजत अम्बुज नीर कंचुकी भूपन हारनि।
ताही प्रेम प्रवाह में उधौ[1] चले बहाय,
भली ग्यान की मेंड हौं ब्रज में दीन्हीं आय।
सकल कुल तरि गयो ॥ ६१ ॥

प्रेम प्रसंसा करत सुद्ध जो भक्ति प्रकासी,
दुविधा ग्यान गिलानि मंदता सिगरी नासी।
कहत मोहिं बिस्मय भयो हरि के ये निज पात्र,
हौं तो कृतकृत ह्वै गयो इनके दरसन मात्र।
मेटि मल ग्यान को ॥ ६२ ॥

पुनि पुनि कहि हरि कहन बात एकान्त पठायो,
मैं इनको कछु मरम जानि एकौ नहिं पायो।
हौं तो निज मरजाद सो ग्यान कर्म कह्यो रोपि,
ये सब प्रेमासक्ति ह्वै कुल लज्जा करि लोपि।
धन्य ये गोपिका ॥ ६३ ॥

---

१ ऊधव चले बहाय।

जो ऐसे मरजाद मेटि मोहन कौं ध्यावैं,
काहे न परमानंद प्रेम पद पी कौ पावैं।
ग्यान जोग सब कर्म तें प्रेम परे है साँच,
हौं यहि पटतर देत हौं हीरा आगे काँच।
विषमता बुद्धि की ॥ ६४ ॥

धन्य धन्य जे लोग भजत हरि कौं जो ऐसे,
और जो पारस प्रेम बिना पावत कोउ कैसे।
मेरे या लघु ग्यान कौं उर में मद रह्यो बाध[१] ,
अब जान्यौं ब्रज प्रेम को लहत न आधौं आध।
वृथा स्रम करि मर्‌यौ ॥ ६५ ॥

पुनि कह सब तें साधु संग उत्तम है भाई,
पारस परसे लोह तुरत कंचन ह्वै जाई।
गोपी प्रेम प्रसाद कौं हौं अब सीख्यौ आय,
ऊधव तें मधुकर भये दुविधा ग्यान मिटाय।
पाय रस प्रेम को ॥ ६६ ॥

पुनि कहि परसत पाँय प्रथम हौं इनहिं निवार्‌यौ,
भृंग संग्या करि कहत निंद सबहिन तें डार्‌यौ।

---

१ उर मद रह्यो उपाव।

अब रहिहौं व्रजभूमि की है पग मारग धूरि,
विचरत पद मोपै परै सब सुख जीवन मूरि।
मुनिनहूँ दुर्लभै ॥ ६७ ॥

कैस होंहु द्रुम लता वेलि बल्ली वन माहीं,
आवत जात सुभाय परै मोपै परछाहीं।
सोऊ मेरे बस नहीं जो कछु करौं उपाय,
मोहन होहिं प्रसन्न जो यह वर माँगौं जाय।
कृपा करि देहु जू ॥ ६८ ॥

ऐसे मग अभिलाप करत मथुरा फिरि आयौ,
गदगद पुलकित रोम अंग आवेस जनायौ।
गोपी गुन गावन लग्यौ मोहन गुन गयौ भूलि,
जीवन कौ लै का करौं पायौ जीवन मूलि।
भक्ति कौ सार यह ॥ ६९ ॥

ऐसे सोचत जहाँ स्याम तहँ आयो धायो,
परिक्रमा दंडौत बहुत आवेस जनायो।
कछु निर्दयता स्याम की करि क्रोधित दोउ नैन,
कछु व्रजबनिता प्रेम की बोलत रस भरि बैन।
सुनो नँदलाडिले ॥ ७० ॥

करुनामयी रसिकता है तुम्हरी सब झूँठी,
जबहीं लौं नहिं लखौ तबहिं लौं बाँधी मूँठी।

मैं जान्यौ ब्रज जायकै तुम्हरो निर्दय रूप,
जे तुमकों अवलंवहीं तिनकों मेलौ कूप।
कौन यह धर्म है ॥ ७१ ॥

पुनि पुनि कहैं अहो स्याम जाय वृंदावन रहिये,
परम प्रेम को पुंज जहां गोपिन सँग लहिये।
और काम सब छाँड़ि कै उन लोगन सुख देहु,
नातरु टूट्यो जात है अवही नेह सनेहु।
करौगे तौ कहा ॥ ७२ ॥

सुनत सखा के बैन नैन भरि आये दोऊ,
विवस प्रेम आवेस रही नाहीं सुधि कोऊ।
रोम रोम प्रति गोपिका है रहि साँवर गात,
कल्पतरोरुह साँवरो ब्रजवनिता भई पात।
उलहि अँग अङ्ग तें ॥ ७३ ॥

है सचेत कहि भलो सखा पठयो सुधि ल्यावन,
अवगुन हमरे आनि तहाँ तें लगे वतावन।
मोमें उनमें अन्तरो एकौ छिन भरि नाहिं,
ज्यों देखौ मो माहिं वे त्यों मैं उनहीं माहिं।
तरङ्गनि वारि ज्यों ॥ ७४ ॥

गोपी रूप दिखाय तबै मोहन बनवारी,
ऊधौ भ्रमहिं निवारि डारि मुख मोह की जारी।
अपनौ रूप दिखाय कै लीन्हों बहुरि दुराय,
नन्ददास पावन भयो जो यह लीला गाय।
प्रेम रस पुंजनी ॥ ७५ ॥

टिप्पणियाँ

टिप्पणी—१

रास-पंचाध्यायी

प्रथम अध्याय

३—नीलोत्पलदल = नीले कमल के पत्ते।
भ्राजे = शोभित होता है।
कुटिल अलक = टेढ़ी जुल्फ, घुँघुराले केश।
अलि अवलि = भौंरों की पंक्ति

४—निसाकर = चन्द्रमा।
प्रतिबन्ध = बाधा।

५—एन = पर।
रतनारे = लाल।
कृष्णरसासव = कृष्ण के प्रेम का आसव।

६—स्रवन = कान।
गंडमंडल = कपोल-मण्डल

७—अधर बिम्ब = बिम्बाफल के समान लाल ओठ।
रसि भीनी = रस भरी।

८—कम्बु कंठ = शङ्ख के समान कंठ की छवि।

१०—हिय सरवर = हृदयसरोवर।

११—त्रिबली = सुन्दर पेट में तीन बल पड़ जाते हैं, उसको त्रिबली कहते हैं।

१२—सुदेस = सुन्दर।
सुव = सुधा।
१३—गूढ़ जानु = रहस्यपूर्ण जधाएं।
१४—मकरन्द = पुष्परस।
१५—मधुकर-निकर = भौंरों का समूह।
दुरि = छिपकर।
दिनमनि = सूर्य।
घुमड़ि-घुरि = तेजी से घिरकर।
१६—लोक-ओक = संसार क्षेत्र, सम्पूर्ण संसार।
विभाकर = सूर्य।
१७—अँधियार-गार = अन्धकार की गुफा।
१८—अमित गति = जिसकी गति की सीमा नहीं।
निगम-सार = वेदशास्त्र का सार।
सुकसार = शुकदेव का पूर्ण ज्ञान।
१९—पंचप्राण = प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, ये पाँच प्राण हैं।
२२—चिद्‌घन = चैतन्यस्वरूप।
२३—नग = पहाड़।
विरुध = वृक्ष इत्यादि।
२४—अविरुद्धि = विरोध-रहित होकर।
हरि = सिंह।
२५—मन्त = सुन्दर।
ओभा = आभा, धूप।
ऑन = अन्य।
२६—भ्रू-विलसति = भृकुटि विलास से।
विभूति = ऐश्वर्य।
२७—अनन्त = शेषनाग।

सकरसन = बलरामजी।
२८—बर बानक = सुन्दर शोभा।
३२—गन्धलुब्ध = सुगन्ध के लोभी।
३८—मनिन्मे सिंह-पीठि = मणिजटित सिंहासन।
३९—कमनीय करनिका = सुन्दर पुष्पाकार छत्री।
पुरन्दर = इन्द्र।
४०—कौस्तुभ मनि = जो हीरा भगवान् विष्णु (कृष्ण) अपने वक्षस्थल पर पहनते हैं।
उड़ = नक्षत्र।
४१—अखिल अंड व्यापी = ब्रह्माण्ड में व्याप्त होनेवाला।
४३—पौगंड = दस वर्ष से सोलह वर्ष तक की अवस्था।
आक्रान्त = प्रभावित।
४५—करखत = आकर्षित करता है।
४८—सुन्दर जराव = सुन्दर जड़न की सामग्री, कुन्दन।
५०—अधर = घन, अधिकता से।
छपा = रात।
५१—उडुराज = चन्द्रमा।
नागर नायक = चतुर नायक।
५३—कुंज रन्ध्र = कुंजों के बीच से।
बितन = विस्तृत, बड़ा।
५४—उझकत है = प्रेमपूर्वक उचक कर झाँकना।
५७—वामविलोचन = सुन्दर कटाक्षपूर्ण नेत्र।
५८—परम्यो = स्पर्श किया, ग्रहण किया।
५६—तरनि किरन = सूर्य किरण।
पखान = पाषाण, पत्थर।
सूर्यकान्तमणि = वह मणि जिसमें सूर्यकिरण से अग्नि प्रकट होती है।

६२—गुनमय सरीर रस = निर्गुणात्मक माया के वश होकर।
सच्यो = सञ्चित।
पच्यो नाहिं रस = ब्रह्मानन्द रस का प्रभाव नहीं हुआ।
६९—रचक = थोड़ा सा।
परिरंभ = आलिंगन भर।
७०—विलुलित = लटकती हुई।
७३—राका मयक = पूर्णिमा का चन्द्र।
८०—सुरलभ = देवताओं को प्राप्त होनेवाली।
८१—ओपी = सनी हुई।
८४—अरबरें = टकटकी लगाये हुए, इकटक।
८५—चक चहनि = चाहने की रुचि।
६४—अलक अलिन के भार = अलका के भौरों के भार से।
११४—गाहन = फासनेवाला।
११५—चोंप = उत्सुकता।
११७—धूधरी = धुधली।
११८—घूटें = लहर।
१२२—पुलिन = किनारे।
१३१—छिलछिल = छिछला, उथला।
१३२—रापन = रापाना।

द्वितीय अध्याय

२—पुट = हलका रंग।
७—मनमूँसें = मन को चुराये।
६—करनीर = इरादा।
१०—दुख दन्दन = दुख नाश करनेवाले।
१२—डहडहे = आसू भरे हुए।
१५—उतग = ऊँचा।

१६—सुरत-सनस = सुरत में सने हुए।
२०—गहवर = घनी।
२२—तनमै = तन्मय, तल्लीन।
२४—बनि आवनि = रूप धरना, मोहकता।
२६—अरिदर = गदा।
३०—जोजत = ध्यान करते हैं।
३२—परम लाल = प्रियतम, परम सुन्दर।
३४—बिलोलै = बिल्लौरी शीशा।
३५—नरक करै = सोचविचार कर पूछती बताती हैं।
४२—धर = धरा पर, पृथ्वी पर।
४३—मानिनि-तनु काछैं = राधा का स्वरूप धर लिया।
४४—कासि कासि = कहा हो, कहा हो।
    बदति = कहती है।
४८—स्रम-कन = पसीने की बूंदें।
४६—लोल रद-छद = सुन्दर दातो के चिन्ह, जो चुम्बन के समय कपोलो पर हुए हैं।
५०—बहुरि बहुरि = लौटकर।
    लाड लडाई = प्यार किया था।

तीसरा अध्याय

१—अवधि-भूत-इन्दिरा-अलंकृत = लक्ष्मी जो चचला आती जाती रहती है, वह भी सदैव के लिए यहा बस रही है।
३—नेन-मूदिवो = आखमिचौनी।
    हासी-फासी = मुसकान की फासी।
७—सिल = कंकड-पत्थर।
८—प्रनत-मनोरथ = दीन दुखियो के मनोरथ।
१७—फनी-फनन पर = कालीनाग के फना पर।

१६—सन-सनै = धीरे धीरे।
अटवी = भाड़ भंखाड़।
तृण-कूर्प = तिनकों की नोकें।
२१—वितरही = प्रदान करता है।

चौथा अध्याय

१—प्रेमसुधानिधि = प्रेमसुधा का समुद्र।
अलबल बोल = प्रेमपूर्वक ढिठाई से बोलना।
२—दृष्टि-बन्द = नजरबन्दी।
नटवर = ऐन्द्रजालिक, मदारी।
३—मनमथ के मन-मथ = कामदेव का भी मन मथन करनेवाले।
४—घट = शरीर।
८—पटकी = दुपट्टी, उत्तरीय वस्त्र।
दाँमन = शरीर में।
१२—दृगनन = दाता में।
ताड़लि = प्रेम से सताती है।
१४—छादन = ओढ़नी, चीर।
छाद दयो है = बिछा दिया है।
१८—अम्बर = वस्त्र।
१६—ठकुराई = स्वामित्व, शासन।
२०—कमल-करनिका = कमल के अन्दर का कर्णफूल।
२२—भजते कौं भजत = भागते हुए का भजन करते हैं, नश्वर संसार में लिप्त हैं।
बिनु भजते भजहीं = शाश्वत परब्रह्म का ध्यान करते हैं, ज्ञानी।
दोउन तजहीं = दोनों को तजते हैं, भक्त लोग, सगुण उपासक
२४—उरिनी = उऋण, उद्धार।

पंचम अध्याय

३—तूल = झगडा झझट।

४—कमल-चक्र पर = कमलाकार चबूतरे पर।

५—एक काल = एक साथ।

६—रवनि = रमणी, थिरक थिरक कर नाचना।

झाईं लईं = प्रतिबिम्ब पडते हैं।

७—स्यामा स्याम = राधाकृष्ण।

११—जुरली = सम्मिलित।

१२—मुरज = मृदंग।

रली = मिल रही है।

१३—चटकनि तारनि की = नाचते समय जो सितारे टूट टूट कर गिरते हैं।

१६—मलकन = बाँकी अदा से नाचना।

१७—ढलकनि = हिलना डुलना।

१८—करतल फिरति = नटों का एक कौतुक विशेष।

लट्टू होत जिय = मन लट्टू होता है।

२०—चाँहि के = कौतुक-पूर्वक।

२२—मुरली-सुर जुरनि = बंशी में अपना सुर मिलाकर।

मुरली का छेकि = मुरली के स्वर से भिन्न स्वर करके।

२३—दे तँबोल ढरि = कपोल चुम्बन करते समय कौतुक-वश पान की पीक लगा कर।

२७—मुरि = लचक कर।

२८—मडल डोलनि = मडलाकार नाचना।

"ता थेई" बोलनि = रासक्रीडा म गान का एक सुन्दर शब्द-विशेष।

२९—छेकि = सब से ऊपर, सब में भिन्न सुन्दर।

३१—मुरभे = पीक पड गय ।
३७ अधरि = मुआधार ।
३८—लटकि = उत्साह पूर्वक ।
४०—रति अविरुद्ध-जुद्ध = अनुकूल सुरति सग्राम ।
४३—धारि धर = पृथ्वी पर ।
४४—डगरो = मार्ग की ओर ।
४७—बीडन = लज्जाजाल ।
४८—मरगजी माल = कुम्हलाया हार ।
मलकति = गम्भीर और धमी सी सुन्दर गति ।
४६—करनी = हथिनी ।
५५—दूरि मुरि = अदा के साथ लुक छिपकर ।
५६—तन अमन = शरीर म लिपट कर ।
६१—प्रकृति वाम = प्रकृतिरूपी रमणी, माया ।
धरि धरि = धम्म धड ।
६५—ब्रह्म मुहूरत = उपाकाल ।
७२—बिषै विदूषित = विषय विकार से दूषित ।
७५—हानिवृद्ध = निनम श्रद्धा नहा ।
धरम नहिर मुख = धम की ओर जिनकी रुचि नहा ।
७८—सप्तनिधि भेदिनि = साता समुद्रा को भेदने वाली ।
धारहि धार रमत = सहज म पार हो जाते हैं ।

टिप्पणी—२

भँवरगीत

१—प्रेम धुजा = प्रेम ध्वजा; प्रेम को ऊचा उठानेवाली।
स्याम-विलासिनी = कृष्ण मे ही सुख मानने वाली।

२—संकेत = एकान्त स्थान।
मधुपुरी = मथुरा जी का प्राचीन नाम।

३—कंठ घुटे = गला भर आया।
व्यवस्था = नियम, विधान।

४—अर्घासन = अर्घ देकर आसन देना।
बलवीर = बलदाऊ जी।

५—राम = बलराम जी।

६—अंग आवेस = रोमाञ्च, प्रेमाकुलता।
प्रबोधहीं = होश मे लाते हैं।

७—अखिल विस्व भरपूरि = "सर्व खल्विदं ब्रह्म"। सम्पूर्ण ससार ब्रह्ममय है।

८—ठगोरी = मोहित करने वाली शक्ति, जादू।

९—सगुन = सत्त्व, रज और तम, इन तीनो गुणों से युक्त साकार स्वरूप।
उपाधि = विकारयुक्त।
निर्गुन = सत्त्व, रज और तम इन तीना गुणों से परे।

निर्लेप=जो किसी से लिप्त नहीं।

अच्युत=जो कभी च्युत न हो, अर्थात् अविनाशी।

१०—हुतो=था।

११—**खंड**=पृथ्वीमंडल।

ब्रह्मंड=सम्पूर्ण विश्व, जिसके भीतर सभी लोक हैं।

जाता=उत्पन्न हुआ है, विनाश होता है।

लीला-गुन=लीला करने के लिए।

जोग-जुगुति=योग साधन से।

परब्रह्म पुर धाम=ब्रह्मपद, परम धाम।

१२—**ईस**=शंकर।

धूरि-छेत्र=पृथ्वी, संसार।

लोक चतुर्दस=चौदह लोक, भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक, अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल।

सप्तदीप=सप्तद्वीप, जंबू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक और पुष्कर।

नवखंड=भरत, इलावृत्त, किंपुरुष, भद्र, केतुमाल, हरि, हिरण्य, रम्य और कुश।

१४—**कर्म अधिकारी**=कर्म फिलासफी के ज्ञाता, व्यंग्य से सकाम भक्त।

कर्मबद्ध × × **जीव बिमुख**=सम्पूर्ण जीव कर्म में फँसकर ही भगवान् से विमुख होते हैं।

१६—कर्म के साथ ही पाप पुण्य आ जाता है और पाप पुण्य दोनों ही लोहे और सोने की बेडी हैं—बेडी चाहे सोने ही की हो, आखिर पैरों के लिए बन्धन तो वह भी है। हां इतना है कि उच्च कर्म से स्वर्ग मिलता है और नीच कर्म से भोग।

पर वास्तव में 'प्रेम' (निष्काम भक्ति) के बिना तो इस विषयवासना-रोग में पच पच कर मरना ही है।

१७—सायुज्य = भगवान् में लीन होना।

१८—योगी ज्योति का ध्यान करते हैं, पर भक्त निज स्वरूप को जानता है—वह अपने अन्दर ही प्रेमपीयूष को प्रकट कर के श्यामली सलोनी मूर्ति को हृदय में धारण करता है। निर्गुण म तो बडा बखेडा है—उसका कोई भी लक्षण यदि हम आगे धरे, तो लोगों को सन्तोष नहीं होता। अरे घर में आया हुआ। (हमारा श्याम सुन्दर स्वरूप)—इसकी हम पूजा न करें—घर में आया हुआ नाग हम न पूजें और बामी (निर्गुण) को पूजने जावें! ऐसी मूर्खता कौन करेगा?

१९—नेति = वेदों में 'नेति', 'नेति' कहकर परब्रह्म का परिचय दिया गया है—अर्थात् 'यह नहीं है', 'यह नहीं'—अर्थात् जितना कुछ नाम, रूप और गुण हैं, उससे वह परे है।

२८—हित रूपै = सगुण का महत्व।

करतल आमलक = हथेली पर रखे हुए आवले के समान।

२९—बागे = वस्त्र।

३०—बिटराति फिरति = व्याकुल घूमती हैं।

३४—व्याल अनल विष ज्वाल तें राखि लये सब ठौर—कालीनाग के विष तथा दावानल इत्यादि सब से रक्षा की थी।

कालीनाग की कथा—यमुना में एक कुण्ड था जिसमें कालीनाग रहता था। उसके विष की अग्नि से कुण्ड का जल सदैव तप्त विषयुक्त रहता था। जो जीव भूले भटके भी उस कुण्ड के निकट चले जाते थ, कुण्ड क जल की विषैली भाफ से मर जाते थे। श्रीकृष्ण चन्द्रजी अपने ग्वालबालों के साथ एक दिन यमुना के तट पर जाकर गद खेलने लगे। उन्होंने खेल म ही अपने मित्र श्रीदामा की गेंद

कालीदह में फेंक दी। जब श्रीदामा गेंद के लिए कृष्णजी से झगड़ने लगे, तब वे कालिया-कुण्ड में कूद पड़े। वहाँ पर भगवान् कृष्णचन्द्र जी तथा कालीनाग में युद्ध हुआ। भगवान् उछलकर उस महा विष धर नाग के फन पर चढ़ गए। उनके बोझ से उसका अंग-प्रत्यङ्ग ढीला हो गया और अन्त में वह पराजित हो गया। कालीनाग की यह कथा श्रीमद्भागवत पुराण में श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित के पूछने पर कही है।

दावानल की कथा—एक बार श्रीकृष्णचन्द्र जी बलराम तथा अन्य ग्वालबालों सहित गायों को चराते हुए मुंज वन में जा पहुँचे। वहाँ वन में दावाग्नि लग जाने के कारण सब लोग व्याकुल हो उठे। जब अग्नि प्रतिक्षण प्रचण्डरूप धारण करती गई तो बलराम सहित समस्त ग्वालबालों ने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी से रक्षा की प्रार्थना की। मित्रों की कातर वाणी सुनकर श्रीकृष्णचन्द्र जी ने कहा, "मित्रो! भयभीत मत हो, अपनी अपनी आँखें मीच लो।" यह सुनकर सब ने अपने अपने नेत्र मूद लिए। भगवान् उस भयंकर अग्नि को पान कर गये; और अपने मित्रों की रक्षा की। यह कथा भी श्रीमद्भागवत पुराण में है।

३५—**पूतना** = एक राक्षसी थी जो कंस के भेजने से बालक श्रीकृष्ण को मारने के लिए गोकुल गई थी। अपने स्तनों पर उसने विष लगा लिया था जिससे श्रीकृष्ण दूध पीकर मर जायें। बालक कृष्ण पर इसका कुछ भी प्रभाव न पड़ा। उन्होंने उसका सारा रक्त चूसकर उसे मार डाला।

३६—**ताड़का** = एक राक्षसी थी जिसे विश्वामित्र जी की यज्ञ-रक्षा करते हुए श्रीरामचन्द्र जी ने मारा था।

३७—**स्त्रीजित** = स्त्री के द्वारा जीता हुआ, स्त्री के वश।

सूपनखा—यह प्रसिद्ध राक्षसी रावण की बहिन थी। भगवान् रामचन्द्र जी के वनवास-काल में काम से पीड़ित होकर यह उनसे विवाह करने गई थी। वहाँ राम के संकेत से श्रीलक्ष्मण जी ने उसके नाक कान काट लिए थे।

३८—**राजा बलि**—यह विरोचन का पुत्र तथा प्रह्लाद का पौत्र दैत्यों का राजा था। भगवान विष्णु ने वामन अवतार लेकर इससे समस्त पृथ्वी दान में ले ली और इसे पाताल भेज दिया।

वामन की कथा—अपनी उग्र तपस्या के बल से दैत्य-राज बलि स्वर्ग का स्वामी बन बैठा। इससे देवताओं के राजा इन्द्र की माता अदिति को बड़ा परिताप हुआ। उसने सहायता के लिए प्रजापति कश्यप से प्रार्थना की। कश्यप ने उसे भगवान् वासुदेव की आराधना के लिए एक व्रत करने की सलाह दी।

अदिति ने कश्यप के आज्ञानुसार नियम-पूर्वक व्रत का अनुष्ठान किया। तब भगवान् विष्णु ने प्रसन्न होकर अदिति के यहाँ वामन रूप म जन्म लिया। यथासमय वामन के जातकर्म तथा उपनयनादि संस्कार किए गए। एक दिन वामन ने सुना कि दैत्यराज बलि ने अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया है। उस समय वे ब्राह्मण का रूप धारण करके बलि के पास गए और उससे केवल तीन पग भूमि की याचना की। दैत्य-गुरु शुक्राचार्य के मना करने पर भी बलि ने वामन भगवान् को भूमि देना स्वीकार किया। इसके पश्चात् देखते देखते वामनदेव का शरीर आश्चर्य-जनक रूप से बढ़ गया। दोनों पैरों से तो उन्होंने पृथ्वी और स्वर्ग नाप लिया और तीसरा पैर बलि के मस्तक पर रखकर उसे बाँध लिया। अन्त में भगवान् वामन ने राजा बलि को पाताल भेज दिया और स्वर्ग का राज्य इन्द्र को प्रदान किया।

३९—हिरन कस्यप=हिरण्यकश्यप प्रसिद्ध विष्णु विरोधी तथा दैत्यों का राजा था। भक्त प्रह्लाद इसी के पुत्र थे। भगवद्भक्ति के कारण यह प्रह्लाद को बहुत कष्ट देता था। अन्त में भगवान् ने नृसिंह अवतार लेकर इसका वध किया।

नृसिंह अवतार की कथा हरिवंश पुराण, भागवत तथा विष्णु पुराण में मिलती है। भागवत में लिखा है कि हिरण्यकश्यप वर प्राप्त कर बहुत प्रबल हुआ और स्वर्ग आदि लोकों को जीतकर राज्य करने लगा। उसके चार पुत्र थे, जिनमें प्रह्लाद विष्णु के परम भक्त थे। एक दिन हिरण्यकश्यप ने परीक्षा के लिए सब पुत्रों को अपने सामने बुलाया और कुछ सुनाने के लिए कहा। प्रह्लाद विष्णु भगवान् की महिमा गाने लगे। इस पर दैत्यराज बहुत बिगड़ा। किन्तु इसका कुछ भी परिणाम न हुआ। प्रह्लाद की भक्ति दिन पर दिन अधिक होती गई। एक दिन हिरण्यकश्यप ने कुपित होकर प्रह्लाद से पूछा—"तू किसके बल पर इतना कूदता है?" प्रह्लाद ने कहा, "भगवान् के, जिसके बल से यह सारा संसार चल रहा है।" हिरण्यकश्यप ने पूछा, 'तेरा भगवान् कहाँ है?" प्रह्लाद ने कहा, "वह सर्वत्र है।" दैत्यराज ने दाँत पीसकर पूछा, "क्या इस खम्भे में भी है?" प्रह्लाद ने कहा, 'अवश्य।' हिरण्यकश्यप खड्ग लेकर खम्भे की ओर क्रोध भरी दृष्टि से देखने लगा। इतने में नृसिंह खम्भ फाड़कर निकल आए और दैत्यराज का वध किया।

४०—परसुराम=परशुराम जी बड़े क्रोधी ब्राह्मण थे। साथ ही पितृभक्ति की भी उनमें पराकाष्ठा थी। यहाँ तक कि अपने पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए ही उन्होंने अपनी माता रेणुका तक का वध कर डाला था। क्षत्रियों से इनका पैतृक बैर था। इसलिए इक्कीस बार इन्होंने क्षत्रियों से भयंकर संग्राम करके पृथ्वी को क्षत्रियरहित कर दिया था। इनकी कथा इस प्रकार है —

श्रीपरशुराम जी विष्णु के छठे अवतार माने जाते हैं। उनके पिता का नाम यमदग्नि ऋषि तथा माता का नाम रेणुका था। एक दिन माता रेणुका नदी में स्नान करने के लिए गईं। वहाँ गन्धर्वराज चित्ररथ को अपनी स्त्री के साथ जलक्रीड़ा करते देखकर उनकी काम-वासना उद्दीप्त हो उठी। जब वह घर लौटीं तो उनकी दशा देखकर यमदग्नि ऋषि अत्यन्त कुपित हुए। उन्होंने अपने चारों पुत्रों को एक एक करके रेणुका के वध की आज्ञा दी; किन्तु स्नेहवश कोई वह निर्दय कार्य न कर सका। इतने में परशुराम आ पहुँचे। महर्षि ने उन्हें भी आज्ञा दी। पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर परशुराम ने माता का शिर काट डाला। यमदग्नि ऋषि अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने अपने आज्ञाकारी पुत्र से वर मांगने के लिए कहा। परशुराम ने कहा, "सर्वप्रथम तो आप मेरी माता को जिला दीजिए और इसके पश्चात् यह वरदान दीजिए कि युद्ध में मेरे सामने कोई टिक न सके।" ऋषि ने अपने पुत्र को दोनों वर प्रदान किये।

एक दिन राजा सहस्रार्जुन यमदग्नि ऋषि के आश्रम पर आये। वहाँ पर रेणुका को छोड़कर कोई दूसरा न था। राजा ने आश्रम के पेड़ पौधों को उजाड़ डाला और ऋषि की कामधेनु के बछड़े का हरण करके वहाँ से चला गया। परशुराम को जब यह समाचार मिला तब उन्होंने अपने फरसे से सहस्रार्जुन की हज़ारों भुजाएँ अपने फड़शे से इस प्रकार काट डालीं जैसे कोई वृक्ष की शाखाओं को काट-छाँट डाले। इसके पश्चात् प्रतिहिंसा रूप में सहस्रार्जुन के कुटुम्बियों ने एक दिन यमदग्नि को मार डाला। परशुराम पितृ-वध का समाचार सुनकर अत्यन्त दुःखी हुए और उन्होंने सम्पूर्ण क्षत्रियों के नाश की प्रतिज्ञा की। इसी प्रतिज्ञा के पालन करने के लिए उन्होंने क्षत्रियों का इक्कीस बार संहार किया था।

पीछे अपने पितृ-तर्पण कर अपने पितरों को सन्तुष्ट किया।

४१—सिसुपाल—शिशुपाल चेदि देश का बड़ा अभिमानी राजा था। भगवान् श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में इसका वध किया। कथा इस प्रकार है—विदर्भ देश के राजा भीष्मक की कन्या रुक्मिणी अत्यन्त रूपवती थी। वह हृदय से श्रीकृष्ण को ही चाहती थी, परन्तु मगध के राजा जरासन्ध की सलाह से भीष्मक अपनी कन्या का विवाह चेदि देश के राजा शिशुपाल से करना चाहता था। जब विवाह का समय आया तो रुक्मिणी ने भगवान् कृष्ण को पत्र लिखा कि अब इस संकट से आप के सिवाय अन्य कोई मेरा छुटकारा करने वाला नहीं है। कृष्ण जी बलराम के साथ वहां पहुंचे। विवाह से एक दिन पूर्व रुक्मिणी इन्द्राणी का पूजन करने गई। उपयुक्त अवसर देखकर श्रीकृष्ण भी वहां पहुंच गए और रुक्मिणी को अपने रथ पर बैठाकर वेग से चल दिए। जब शिशुपाल आदि राजाओं को यह समाचार मालूम हुआ तो वे युद्ध करने के लिए आ पहुंचे। श्रीकृष्ण ने उन सब को पराजित किया और रुक्मिणी को अपने महलों में लाकर विधिपूर्वक उसके साथ विवाह किया। इस पर शिशुपाल कृष्ण से द्वेष करने लगा। परन्तु कृष्ण जी की बुआ का वह लड़का था। अतएव वे बराबर क्षमा करते गये। अन्त में धर्मराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में जब शिशुपाल का द्वेष चरम सीमा पर पहुंच गया, तब भगवान् कृष्ण ने सुदर्शनचक्र से उसका सिर उड़ा दिया।

४३—तिमिर भाव आवेस = अपनी अज्ञानता पर।

४४—मसिहारे = काले।

नाथो जोग भुजग = योग का नाग ले आया। इस पद्य में गोपिकाओं ने भ्रमर को सम्बोधन करके श्रीकृष्ण और

उद्धव दोनों पर छींटा कसने शुरू किये हैं। भँवर, उद्धव और श्रीकृष्ण—तीनों को एक रूप माना है।

२०—द्विविध ज्ञान=निर्गुण सगुण का भेद; क्योंकि गोपिकाएँ अभेद भक्ति मानती हैं।

२४—संथा=पाठ।

जोग चटसार=योग की पाठशाला।

२५—वस्तु बिना गुन नाहिं=अर्थात् जिसका कुछ अस्तित्व है, उसमें गुन अवश्य है। कोई भी वस्तु निर्गुन नहीं कही जा सकती; और यदि निर्गुन मान भी लिया जाय, तो वह निराकार होने से सिर्फ अतीन्द्रिय की ही वस्तु हो सकती है, परन्तु सगुण तो सम्पूर्ण विश्व में प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है।

२६—हुती=थी।

२७—कुबजा तीरथ=गोपियाँ कुबजा दासी को व्यंग्य से श्रीकृष्ण और उद्धव (गुरु चेले) का तीर्थ—यानी "तारनेवाला" बतलाती हैं और कहती हैं कि वहाँ जाकर तुम लोगों ने इन्द्रियों का मेला लगाया है—जैसे योगी लोग अपने इष्ट के लिए सम्पूर्ण इन्द्रियों को एक ही जगह तल्लीन करते हैं।

२८—औगुन गुन गहि लेत हैं=अवगुण को गुण की तरह ग्रहण करते हैं।

२९—चौरंगी=चालाक, "मदन त्रिभंगी आपु हैं, करी त्रिभंगी नारि"—आप स्वयं तो कामदेव की तरह सुन्दर त्रिभंगी छवि रखते हैं; परन्तु स्त्री भी क्या ही स्वरूपवान त्रिभंगी कुब्जा कुबड़ी दासी मात्र की है। वाह!

हो—जब तक तुम को भीतर से न देखा जाय, तभी तक तुम्हारा यह झूठा आडम्बर है। भेद खुल जाने पर तुम में कुछ भी नहीं है।

७३—उद्धव की बातें सुनकर भगवान् कृष्ण की दोनों आखें भर आईं। गोपियों के प्रेम में वे इतने मग्न हो गये कि उन्हें कुछ भी सुधबुध नहीं रह गई। उनके श्यामले शरीर में रोमाञ्च हो आया, तो उनका एक एक रोम गोपिका बन गया! उनका साँवला शरीर तो मानो कल्पवृक्ष हुआ, और उनके अग अग में व्रज-वनिताएँ मानो पत्तों की तरह फूट पड़ीं!

७४—"टारि मुख मोह की जारी"—सम्मोहन विद्या में मुख के ऊपर ही जादू डाली जाती है, जिसका सर्वाङ्ग पर असर होता है। "जारी" से अभिप्राय यहा "जाल" या जादू से है।

तरुण-भारत-ग्रन्थावली

साहित्यिक और स्वास्थ्य-सम्बन्धी पुस्तकें, जो प्रत्येक पढ़ेलिखे घर में रहनी चाहिएं।

(१) कालिदास और उनकी कविता—लेखक आचार्य महावीर-प्रसाद जी द्विवेदी। यदि आप महाकवि कालिदास के समय के भारतवर्ष की सैर करना चाहते हैं, यदि आप कालिदास की कविता की मार्मिक आलोचना पढ़ कर उसका रसास्वादन करना चाहते हैं, तो आचार्य द्विवेदी जी का यह ग्रन्थ अवश्य मँगाकर देखें। मूल्य १) रु०।

(२) सुभाषित और विनोद—लेखक प० गुरुनारायण जी सुकुल। साहित्य की अनुपम छटा के साथ सुरुचिपूर्ण हास्य-विनोद-सम्बन्धी यह एक अनुपम ग्रन्थ है। इसमें हजारों ऐसे हास्यविनोद-युक्त चुटकुले दिये गये हैं, जिनको पढ़ कर केवल आप का मनोरंजन ही नहीं होगा; बल्कि आप का चातुर्य और ज्ञान भी बढ़ेगा। स्त्रियों और बच्चों के लिए तो बहुत ही उपयोगी है। मूल्य १॥) रु०।

(३) भावविलास—टीकाकार प० लक्ष्मीनिधि जी चतुर्वेदी साहित्य-रत्न। महाकवि देव का यह ग्रन्थ क्या काव्यसौन्दर्य की दृष्टि से, और क्या रीतिग्रन्थ की दृष्टि से, हिन्दीसाहित्य में बहुत ही ऊँचे दर्जे का माना जाता है। हमने इसकी नवीन आवृत्ति सजिल्द सटीक और अर्थसहित निकाली है। देवकवि की कविता का चमत्कार देखना हो, तो इस ग्रन्थ को देखिये। मूल्य १॥) रु०।

(४) साहित्यसीकर—लेखक आचार्य महावीरप्रसाद जी द्विवेदी। इस ग्रन्थ में द्विवेदी जी के कई उपयोगी साहित्यिक निबन्धों का संग्रह है। यह ग्रन्थ हिन्दीसाहित्य-सम्मेलन तथा पंजाब की प्रान्तीय परीक्षा में भी पढ़ाया जाता है। हिन्दी और संस्कृत साहित्य का मार्मिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए इस ग्रन्थ को अवश्य पढ़ना चाहिए। मूल्य १) रु०।

(५) साहित्यसुषमा—सम्पादक पं० नन्ददुलारे वाजपेयी एम०

विशेष स्थान है। इसी ग्रन्थ पर नागपुर हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के अवसर पर ५००) रु० का सेकसरिया महिला पारितोषिक लेखिका को मिला है। मूल्य ।।=) आने।

(१०) अर्चना—लेखक ठाकुर चन्द्रभानुसिंह जी। ठाकुर साहब हिन्दी के एक बहुत ही होनहार और उदीयमान कवि हैं। आपकी कविताओं में वह माधुर्य, वह रस, वह ओज और वह भाव प्राबल्य है कि पाठक के चित्त को बलात् हरण कर लेता है। आपकी कविताओं में प्रकृति सुषमा का दार्शनिक चित्रण बहुत ही अनोखे ढंग से रहता है। डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुर तक ने आपकी कविताओं को पसन्द किया है। पुस्तक सजिल्द है। मूल्य १।।) रु०।

ग्रन्थावली की अन्य पुस्तकें

१—प्राणायाम रहस्य	१।।)	१३—सचित्र दिल्ली	।।।)
२—गार्हस्थ्यशास्त्र	१)	१४—अपना सुधार	।।–)
३—धर्मशिक्षा	१)	१५—महादेव गोविन्द रानडे	।।।)
४—सदाचार और नीति	।।।)	१६—इच्छाशक्ति के चमत्कार	।–)
५—हृदय का काँटा	१।।)	१७—हमारा स्वर	।–)
६—निराला फूल	१।।)	१८—उषःपान	।–)
७—फूलवाली	२)	१९—कान के रोग और चिकित्सा	।)
८—जीवन का मूल्य	१।।)	२०—साम्यवाद के सिद्धान्त	।।)
९—जीवन के चित्र	१)	२१—दयालु माता	।=)
१०—हमारे बच्चे	१)	२२—सद्गुणी पुत्री	।=)
११—भोजन और स्वास्थ्य पर म० गाँधी के प्रयोग	।।)	२३—बच्चों की सचित्र कहानियाँ पाँच भाग मू०प्रत्येक का	।=)
१२—ब्रह्मचर्य पर म० गाँधी के अनुभव	।।)	२४—वेदान्त रहस्य	१।।)

मिलने का पता—

तरुण-भारत-ग्रन्थावली-कार्यालय, दारागञ्ज, प्रयाग।